ISSN-0971-8397

योजना

मास्क अप इंडिया

फरवरी 2021 विकास को समर्पित मासिक ₹ 22

भारतीय साहित्य

मौखिक परंपरा और भारतीय साहित्य
डॉ चन्द्रशेखर कम्बार

भारतीय साहित्य का उद्भव
डॉ के श्रीनिवासराव

विश्व पटल पर भारतीय साहित्य
डॉ निशात ज़ैदी

उर्दू भाषा और साहित्य
हसन ज़िया

भारत की आज़ादी और हिन्दी साहित्य
मैनेजर पाण्डेय

हिंदी भाषा व देवनागिरी लिपि का विकास
आलोक श्रीवास्तव

हिंदी बाल साहित्य का परिदृश्य
प्रकाश मनु

तोल्कप्पियम - प्राचीन व्याकरण
प्रो के वी बालासुब्रमण्यन

Scanned with CamScanner

गुरुदेव का साहित्यिक जीवन

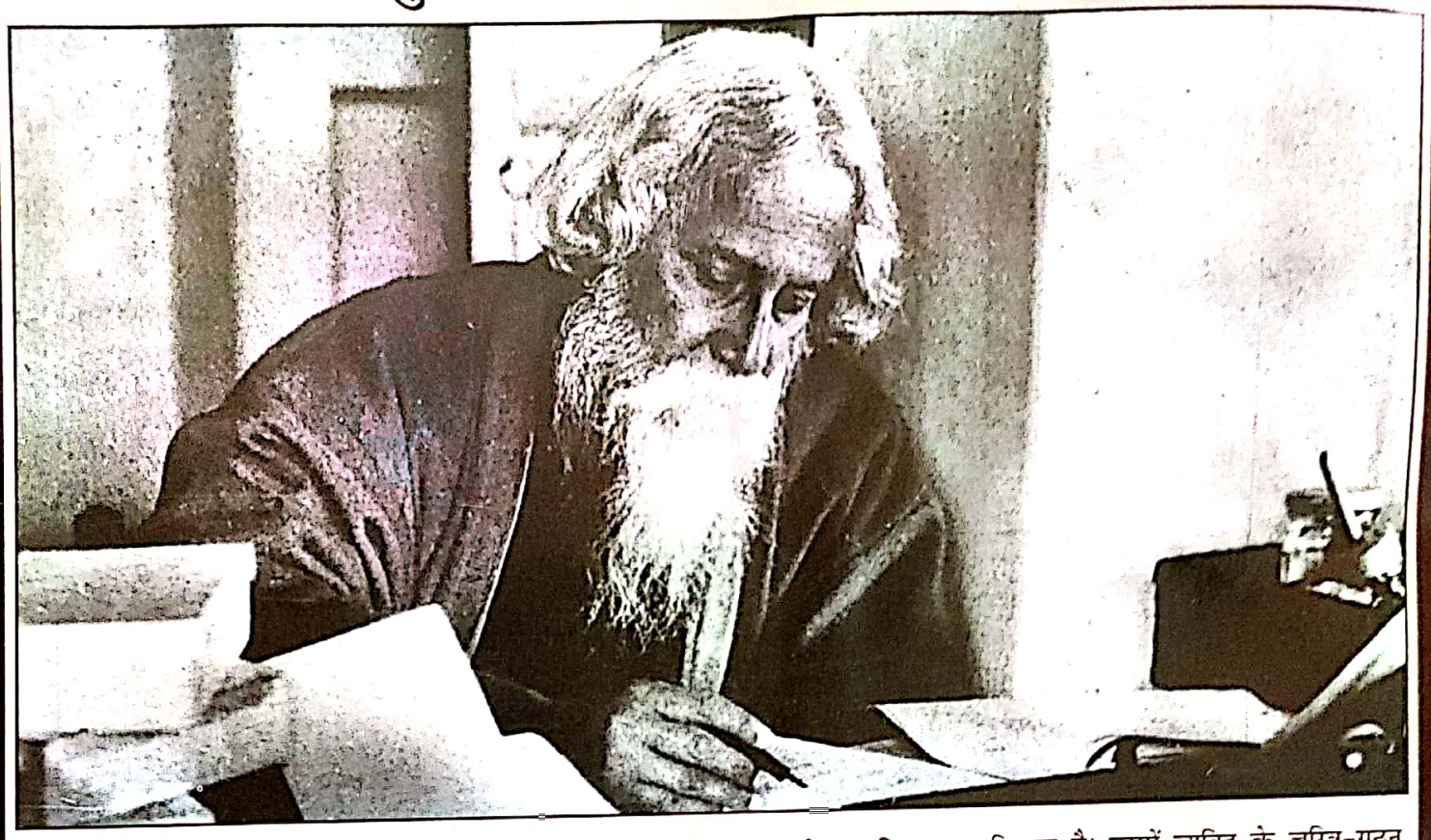

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर केवल बंगाल या भारत के ही नहीं, समग्र विश्व के कवि थे। उन्होंने अपनी चेतना को विश्व के मर्मस्थल में प्रविष्ट और अपनी कल्पना की सहायता से उसे भविष्य में संचारित कर दिया था। उनकी प्रतिभा इतनी विराट् थी कि उनके प्रति युग पुरुष की आख्या सर्वथा सार्थक सिद्ध होती है। रवीन्द्रनाथ एक साथ ही कवि, नाट्यकार, कथा-साहित्यकार एवं समालोचक, दर्शन, इतिहास, विज्ञान एवं धर्मतत्व व्याख्याता, चित्रशिल्पी, शिक्षाव्रती एवं समाज सुधारक थे। जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में उनका स्थान अग्रगण्य है। गुरुदेव पहले एशियाई थे जिन्हें साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। अपने साहित्य में उन्होंने स्वदेश की दुःख, वेदना, कल्पना, कांमना, ध्यान-धारणा को सार्थक रूप में भाषा प्रदान की है। सांस्कृतिक क्षेत्र में, उन्होंने संगीत की एक नई शैली को जन्म दिया, जो उनके नाम पर 'रवीन्द्र संगीत' कहलाई और इस तरह वे एक असाधारण स्वर-शिल्पी के रूप में सामने आए। परंपरागत भारतीय नृत्यों के संरक्षक की हैसियत से, उन्होंने उन्हें पुनरुज्जीवित किया और इस प्रक्रिया में नृत्य की एक नई शैली प्रस्तुत की। और, अंत में, वृद्धावस्था में, जब वे चित्रकार बन गए तो विदेशी कला-पारखियों से उन्हें बहुत ही उत्साहपूर्ण सराहना मिली।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म 7 मई, 1861 को कोलकाता के जोडासांर्का की ठाकुरवाड़ी में द्वारकानाथ ठाकुर लेन स्थित उनके पैतृक 'वास भवन' में हुआ। अपने पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के वह चौदहवीं सन्तान थे। उनके पितामह का नाम द्वारकानाथ ठाकुर था, जिनके नाम से कोलकाता की उस गली का नामकरण हुआ। उनकी माता का नाम शारदा देवी था।

रवीन्द्र-साहित्य बड़ा विशाल है। उसमें व्यक्ति के चरित्र-गठन, समाजसंगठन, स्वदेशप्रेम, आनन्दलाभ एवं कर्मप्रेरणा के विचित्र उपादान संचित हैं। रवीन्द्र-साहित्य केवल मनोरंजन की ही वस्तु नहीं है; उसमें केवल व्यक्तिमन के गठन के उपादान ही नहीं, बल्कि समष्टिमन के गठन के उपादान भी पर्याप्त हैं। समाज-सुधार एवं राष्ट्र-गठन के जिन आदर्शों की ओर उन्होंने हमारा ध्यान अपने साहित्य के माध्यम से आकृष्ट किया है, उनको भलीभांति समझकर उन्हें कार्यान्वित करना होगा।

गुरुदेव ने लिखा था: "दुर्बलता-द्वारा मोक्षलाभ सम्भव नहीं और दुर्बलता का प्रधान कारण यह है कि जो हमारे अपने हैं, उनको छोड़कर हम अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए एक सहज मार्ग ढूंढ़ने की चेष्टा में लगे हुए हैं। किन्तु सिद्धिलाभ का पथ सहज नहीं होता।" कवि का यह कथन कितना सत्य था, यह स्पष्ट रूप से उस समय देखा गया जब गांधीजी ने राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश और नेतृत्व ग्रहण किया। गांधीजी, नगर की राजनीति को ग्रामों में ले गए।

आधुनिक भारत के निर्माताओं में रवीन्द्रनाथ ठाकुर का महत्वपूर्ण स्थान है। उनके अनेक योगदान अपनी अलग विशेषता रखते हैं। उन्हें एक असाधारण साहित्यिक विभूति बनाने में जहां उनकी जन्मजात प्रतिभा प्रमुख कारण थी, वहीं पारिवारिक वातावरण भी उसके विकास में कोई कम महत्वपूर्ण नहीं रहा। रवीन्द्रनाथ को खुद इसका पूरा अहसास था और अपने संस्मरणों में उन्होंने इसकी पुष्टि की है। "बचपन में मुझे यह बड़ा लाभ रहा कि घर में दिन-रात साहित्यिक गतिविधियों का वातावरण छाया रहता था। साहित्य और कला-साधना में उन लोगों के उत्साह की कोई सीमा ही नहीं थी, मानो सभी संभव

(आगे का भाग पृष्ठ 61 पर...)

Scanned with CamScanner

योजना

वर्ष : 65
अंक : 02

फरवरी 2021
माघ-फाल्गुन, शक संवत् 1942

मूल्य : ₹ 22
पृष्ठ : 64

वेबसाइट www.publicationsdivision.nic.in

प्रधान संपादक : शुभा गुप्ता
वरिष्ठ संपादक : कुलश्रेष्ठ कमल
संपादक : डॉ ममता रानी

संपादकीय कार्यालय
648, सूचना भवन, सीजीओ परिसर,
लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003

उत्पादन अधिकारी : के रामालिंगम
आवरण : गजानन पी धोपे

योजना का लक्ष्य देश के आर्थिक विकास से संबंधित मुद्दों का सरकारी नीतियों के व्यापक संदर्भ में गहराई से विश्लेषण कर इन पर विमर्श के लिए एक जीवंत मंच उपलब्ध कराना है।

योजना में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने और व्यक्तिगत हैं। जरूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो।

योजना में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए योजना उत्तरदायी नहीं हैं।

योजना में प्रकाशित आलेखों में प्रयुक्त मानचित्र व प्रतीक आधिकारिक नहीं है, बल्कि सांकेतिक हैं। ये मानचित्र या प्रतीक किसी भी देश का आधिकारिक प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं।

योजना लेखकों द्वारा आलेखों के साथ अपने विश्वसनीय स्रोतों से एकत्र कर उपलब्ध कराए गए आंकड़ों/तालिकाओं/इन्फोग्राफिक्स के संबंध में उत्तरदायी नहीं है।

योजना घर मंगाने, शुल्क में छूट के साथ दरों व प्लान की विस्तृत जानकारी के लिए **पृष्ठ-59** पर देखें।

योजना की सदस्यता का शुल्क जमा करने के बाद पत्रिका प्राप्त होने में कम से कम 8 सप्ताह का समय लगता है। इस अवधि के समाप्त होने के बाद ही योजना प्राप्त न होने की शिकायत करें।

योजना न मिलने की शिकायत या पुराने अंक मंगाने के लिए नीचे दिए गए ई-मेल पर लिखें -
pdjucir@gmail.com

या संपर्क करें- **दूरभाष: 011-24367453**
(सोमवार से शुक्रवार सभी कार्य दिवस पर
प्रात: 9:30 बजे से शाम 6:00 बजे तक)

योजना की सदस्यता की जानकारी लेने तथा विज्ञापन छपवाने के लिए संपर्क करें–
गौरव शर्मा, संपादक, पत्रिका एकांश
प्रकाशन विभाग, कमरा सं. 779, सातवां तल,
सूचना भवन, सीजीओ परिसर,
लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003

@DPD_India

इस अंक में

मौखिक परंपरा और भारतीय साहित्य
डॉ चन्द्रशेखर कम्बार.....6

भारतीय साहित्य का उद्भव
डॉ के श्रीनिवासराव.....10

विश्व पटल पर भारतीय साहित्य
डॉ निशात ज़ैदी.....14

भारत का अमृत महोत्सव
भारत की आज़ादी और हिन्दी साहित्य
मैनेजर पाण्डेय.....18

हिंदी भाषा व देवनागरी लिपि का विकास
आलोक श्रीवास्तव.....24

संस्कृत भाषा – विचारात्मक अध्ययन
डॉ आशीष कुमार.....30

हिंदी बाल साहित्य का परिदृश्य
प्रकाश मनु.....34

उर्दू भाषा और साहित्य
हसन ज़िया.....38

तोल्कप्पियम - प्राचीन व्याकरण
प्रो के वी बालासुब्रमण्यन.....44

मराठी साहित्य
श्रीधर नांदेड़कर.....50

योजना - सही विकल्प.....60

नियमित स्तंभ

पुस्तक चर्चा :
गुरुदेव का साहित्यिक जीवन.....कवर-2

क्या आप जानते हैं?
कोविड-19 वैक्सीन के बारे में अक्सर पूछे जाने वाले प्रश्न.....56

प्रकाशन विभाग के देश भर में स्थित विक्रय केंद्रों की सूची के लिए देखें पृ.सं. 28

हिंदी, असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, तमिल, तेलुगु, मराठी, ओडिया, पंजाबी तथा उर्दू में एक साथ प्रकाशित।

Scanned with CamScanner

आपकी राय

yojanahindi@gmail.com

सरकार को जानने का सबसे सस्ता माध्यम 'योजना'

'योजना' टीम के सभी सदस्यों का धन्यवाद, आपके सरल शब्दों के लेखन के कारण भारत सरकार के सभी कार्यकलापों की जानकारी आम आदमी तक पहुंच जाती हैं, यह सबसे अच्छा और सबसे सस्ता माध्यम है सरकार को जानने का। आप लोग सम्पूर्ण भारत वर्ष के समस्त विषय-वस्तुओं की सरलतम जानकारी उपलब्ध कराते हैं, इसके लिए आप सभी का धन्यवाद। यह पत्रिका सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी कर रहे उम्मीदवारों के लिए एक वरदान से कम नहीं है, इसका सही तरीके से अध्ययन आपको सफलता प्राप्त करने में मददगार होगा।

– दुर्गेश मिश्रा
महराजगंज उत्तर प्रदेश

लोकतांत्रिक मूल्यों का संरक्षण

इंडिया@75 पर आधारित जनवरी 2021 का विशेषांक मेरे हाथ में है। डॉ नजमा हेपतुल्ला जी का लेख 'मूल्यों का संरक्षण' पढ़ा जिसमें भारतीय राजनीति और शासन के लिए अत्यंत आवश्यक पहलू पर आधारित एक सारगर्भित एवं महत्वपूर्ण चर्चा की गई है। उन्होंने आलेख में समकालीन चुनौतियों को उजागर कर उनका उपाय भी सुझाया है।

भारतीय समाज विविधता वाला है एवं लोकतंत्र में सभी का सम्मान एवं भागीदारी आवश्यक होती है। आज़ादी के 75 साल होने को है ऐसे में हमें हमारे लोकतंत्र की सफलता पर अवश्य ही गर्व होना चाहिए क्योंकि आज़ादी के वक्त कई पश्चिमी विद्वानों ने भारत में लोकतंत्र की सफलता हेतु आशंका जताई थी। इसमें संदेह नहीं कि समय के साथ कुछ कमियां भी इसमें देखने को मिल रही है जिसका समाधान हम सभी को ईमानदारी से अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए, भागीदारी बढ़ाते हुए, अपने मूल्यों के प्रति समर्पित होकर अपने राष्ट्र के लिए समर्पित होकर करना चाहिए।।

– मनीष रमन
अलवर, राजस्थान

ज्ञानवर्धक आलेख

मैं योजना का कई वर्षो से नियमित पाठक रहा हूं। भारतीय समाज को समर्पित दिसम्बर 2020 अंक में विभिन्न मुद्दों पर आलेख काफी ज्ञानवर्धक थे। प्रमुख आलेख में श्री थावरचंद गेहलोत जी ने योजनाओं का सीमांत तथा वंचित वर्गों का कल्याण में जिस तरह से वर्णन किया है वह वास्तव में क़ाबिले तारीफ है। उसी प्रकार से विशेष आलेख में महिला सुरक्षा से संबंधित रेखा शर्मा का आलेख 'कार्यस्थल और घर पर समानता' में महिलाओं और पुरुषों के बीच समानता लाने और महिलाओं के साथ हिंसा समाप्त करने पर जो आलेख प्रस्तुत किया है वह वास्तव में सराहनीय है। दुर्गाशंकर मिश्रा जी के आलेख 'शहरी इलाकों में बढ़ती स्वच्छता' में पाठकगण के लिये ज्ञानवर्धक के साथ विभिन्न प्रतियोगिता के तैयारी के लिए अच्छे आलेख है।

– सुजीत कुमार
आर.एम.एस.कालोनी,
उर्दू बाज़ार, भागलपुर बिहार

एकाग्र रहने को बाध्य किया

भारत का अमृत महोत्सव, 'इंडिया@75' नामक विशेषांक प्रस्तुत करने के लिए संपादकीय टीम की जिजीविषा को प्रणाम! कवर पेज पर ही 'रायसीना हिल्स' का दर्शन हुआ। महामहिम राष्ट्रपति जी का संदेश 'योजना' की महानता को प्रज्वलता प्रदान कर रहा है। 'संपादकीय' ने एकाग्र रहने को बाध्य किया। ऋग्वेद के वैदिक प्रार्थनाएं 'सार्वभौमिक सृजन' की आधारशिला हैं। महामहिम उपराष्ट्रपति जी के 'स्वतंत्रता के 75 वर्ष' नामक आलेख में स्वामी विवेकानंद जी के उद्बोधन का जिक्र 'आत्मविश्वास' की ओर इशारा करते है।

'संघवाद' को समझने के लिए पृष्ठ सं 28 से 33 अवलोकनार्थ प्रस्तुत है। मिल्खा सिंह के आलेख खेलों में एक नया भविष्य दिखाते हैं। 'नए भारत के लिए सिनेमा' कला एवं संस्कृति को जीवंत बनाते हैं। विश्व प्रसिद्ध बांसुरी वादक पं हरि प्रसाद चौरसिया को देखकर उनके स्मरण ताज़ा हो गये। सूचना प्रौद्योगिकी की दिशा में बालेन्दु शर्मा जी 'लगातार कार्यशील' हैं। पेरिस समझौता पर्यावरणीय प्रश्नों को हल करने में सहायक है।

– देवेश त्रिपाठी
ग्राम व पोस्ट-मेंहदूपार,
जनपद-संत कबीर नगर, उत्तर प्रदेश

योजना मार्च 2021
'बजट विशेषांक'
आज ही अपनी प्रति निकटतम पुस्तक विक्रेता के पास सुरक्षित कराएं।

Scanned with CamScanner

संपादकीय

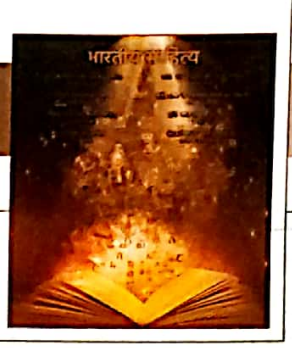

भारतीय साहित्य

पुस्तकें अनंत हैं और समय सीमित है। ज्ञान का रहस्य यही है कि जो आवश्यक है, उसे ग्रहण कर लिया जाए। उसे ग्रहण करो और उसी के अनुरूप जीवन जिओ। - स्वामी विवेकानंद

महामारी ने हमें सामान्य जीवन से परे देखने और गहराई से सोचने का मौका दिया। कोरोना-काल ने हमें आत्म-निर्वासन के अकेलेपन में धकेल दिया और हमें सामान्य जीवन की उन तमाम नेमतों के बारे में फिर से सोचने और उनके प्रति कृतज्ञ होने का अवसर दिया जिनके बारे में हम मानते रहे थे कि ये तो हमें सहज ही सुलभ हैं। इस बीमारी ने अकल्पनीय तरीके से जीवन-शैली और जीवन की लय को बदल दिया। लोगों ने जिजीविषा, अनुकूलन और बढ़ते चले जाने के नए तरीके सीखे। इस अभूतपूर्व अंधकार के बीच, कला और साहित्य निरंतर आशा की मशाल बने रहे, हमारे जीवन को समृद्ध बनाते रहे और हमें मनुष्य होने का मर्म सिखलाते रहे। साहित्य के संक्षेत्र (प्रिज्म) के जरिए, हम शब्दों के उस लालित्य को समझ पाते हैं जो न केवल हमारे अशांत मन को सुख देता है, बल्कि समाज का भी दर्पण बनता है ताकि हम विविध सांस्कृतिक मूल्यों और इनसे जुड़े इतिहास को समझ सकें, उन्हें अंगीकार कर सकें। शब्दों की ताकत और जादू ने हमारे आकाश का, हमारे क्षितिज का विस्तार किया।

अर्जेंटीनियाई कथाकार, कवि और स्पेनिश भाषा के लेखक ख़ोर्के लुइस बोर्ख़ेस ने कहा है, "लेखक मरते हैं तो पुस्तक बन जाते हैं। यह अवतार कुछ बुरा तो नहीं है।" 2020 के भयावह वर्ष ने हमसे साहित्य के अनेक नक्षत्र छीन लिए लेकिन वे अपने शब्दों के जरिए हमारे बीच बने रहेंगे और कला और साहित्य के प्रति अपने अनुपम योगदान के लिए हमेशा याद किए जाते रहेंगे।

साहित्य समाज की सभी बुराइयों का रामबाण उपचार है और सीखने-समझने का समर्थ साधन भी है। इस अंक में हमने भारतीय साहित्य की विविध विधाओं की विकास-यात्रा से परिचित कराने का प्रयास किया है। आशा है यह आपके लिए अद्‌भुत साहित्यिक अनुभव रहेगा। भारतीय साहित्य में आकर्षक विविधता है और इसके विषयों, विचारों और शैलियों में अनेक परिवर्तन होते रहे हैं। इन गहन परिवर्तनों और विविधता के साथ-साथ, भारतीय साहित्य देश के जन-मानस से जुड़ा रहा है, उसे प्रेरित करता रहा है। इसके पीछे भारतीय उप-महाद्वीप की भाषाई सघनता और किसी भाषा और सांस्कृतिक धारा से ग्रहण कर लेने और अपना लेने की सहज प्रवृत्ति रही है। तात्कालिक रुझानों से अविचलित रहते हुए अपने समृद्ध अभिव्यक्ति को बनाए रखने की साहित्यकारों की क्षमता ने अनेक भाषाओं में साहित्य में अभिवृद्धि की है।

भारतीय साहित्य का प्रारम्भ तो वेदों की ऋचाओं के साथ हो गया था जो समय के साथ-साथ नए-नए रूप और अभिव्यक्तियां ग्रहण करता गया। यह एक बहु-सांस्कृतिक पटल है जिस पर हजारों रंगों वाली विविधताएं शब्दों की लय से अनूठा संगीत बुनती हैं। प्रसिद्ध अमरीकी लेखक, प्रकाशक एवं उद्यमी मार्क ट्वेन कहते हैं, "भारत मानव-जाति का पालना है, मनुष्य की वाणी का जन्म-स्थान है, इतिहास की माता है, कथा-गाथाओं की दादी मां है और परंपरा की परदादी है।"

इस अंक में हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि के विकास का इतिहास और इसके वैज्ञानिक और तकनीकि पहलुओं के साथ-साथ हिंदी साहित्य की विविध विधाओं के बारे में तथा उनका देश की स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान पर विस्तार से भी चर्चा की गई है। बालमन के अनुरूप हिंदी में लेखन सदैव ही चुनौतीपूर्ण रहा है, इस पर भी प्रकाश डाला गया है। न केवल कई भारतीय भाषाओं, बल्कि विश्व की अनेक भाषाओं की जननी संस्कृत की महत्ता और आज के संदर्भ में इसके और प्रासंगिक होने तथा उपयोगिता का संक्षिप्त परिचय भी है। सर सैयद अहमद खान के प्रयासों से उर्दू-लेखन की नई परंपरा शुरू हुई। उनके द्वारा चलाए गए सामाजिक सुधार आंदोलन के बाद, उर्दू की तरक्की पसंद धारा ने नए अदीबों के लिए जैसे मानक तय कर दिए और अदब में बदलाव का आगाज़ किया। देश की स्वतंत्रता के पूर्व और इसके पश्चात, साहित्य के अन्य क्षेत्रों में विविध विधाओं में प्रचुर लेखन हुआ। व्याकरण के प्राचीन ग्रंथ 'तोल्कप्पियम' ने तमिल साहित्य को शब्द-अनुशासन दिया और संगम युग में यह जैसे जीवन-शैली ही बन गया। आनंद, सरलता और वैराग्य से संपन्न भक्ति काव्य ने तो एक आंदोलन को ही जन्म दिया और इन कवियों ने अपनी कविता से अज्ञान के अंधकार को दूर करने का प्रयास किया। फारसी कविता ने शाही दरबारों को भी सजाया और सूफियों की खानकाहों को भी गुंजाया। उधर हिन्दी साहित्य में, सप्तक परंपरा ने रूमानी कविता और नए सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति दी। महिलाओं के लेखन और नारीवादी विमर्श ने मूक और अब तक न सुने गए वर्ग को अभिव्यक्ति दी और भारतीय साहित्य के कथ्य और शिल्प को प्रभावित किया। दलित और आदिवासी समुदायों ने भी कलम की ताकत से अपने सरोकारों, संघर्षों तथा सदियों के दुर्व्यवहार को आवाज़ दी। उनके पक्षधर लेखक-लेखिकाओं ने सामाजिक छद्म और दिखावे को उजागर किया और दलितों-वंचितों को निरंतर दबाए जाने की प्रवृत्तियों का प्रतिरोध किया।

प्रस्तुत अंक में भारतीय साहित्य और आधुनिक लेखन के विविध पक्षों पर विहंगम दृष्टि डालने के साथ-साथ अंक की सज्जा को विषय के अनुरूप मनोरम बनाने का भी प्रयास किया गया है। पत्रिका के सीमित पृष्ठों पर साहित्य जैसे विशद विषय को समेटना बहुत कठिन है। आशा है कि भारतीय साहित्य के लालित्य को व्यक्त करने का यह प्रयास पाठकों को अच्छा लगेगा। महामारी की आपदा अब भी हमारे जीवन से बाहर नहीं हुई है लेकिन इस कठिन समय और अनिश्चितताओं को पीछे छोड़ते हुए हमने उम्मीदों और सपनों के साथ नए वर्ष में प्रवेश किया है। ऐसे समय में, तमाम तकलीफ़ों और सदमों के बावजूद, हमारे लिए करुणा, उदारता और सद्‌भाव बनाए रखना और बेहतर कल की उम्मीद रखना बेहद ज़रूरी है। ■

Scanned with CamScanner

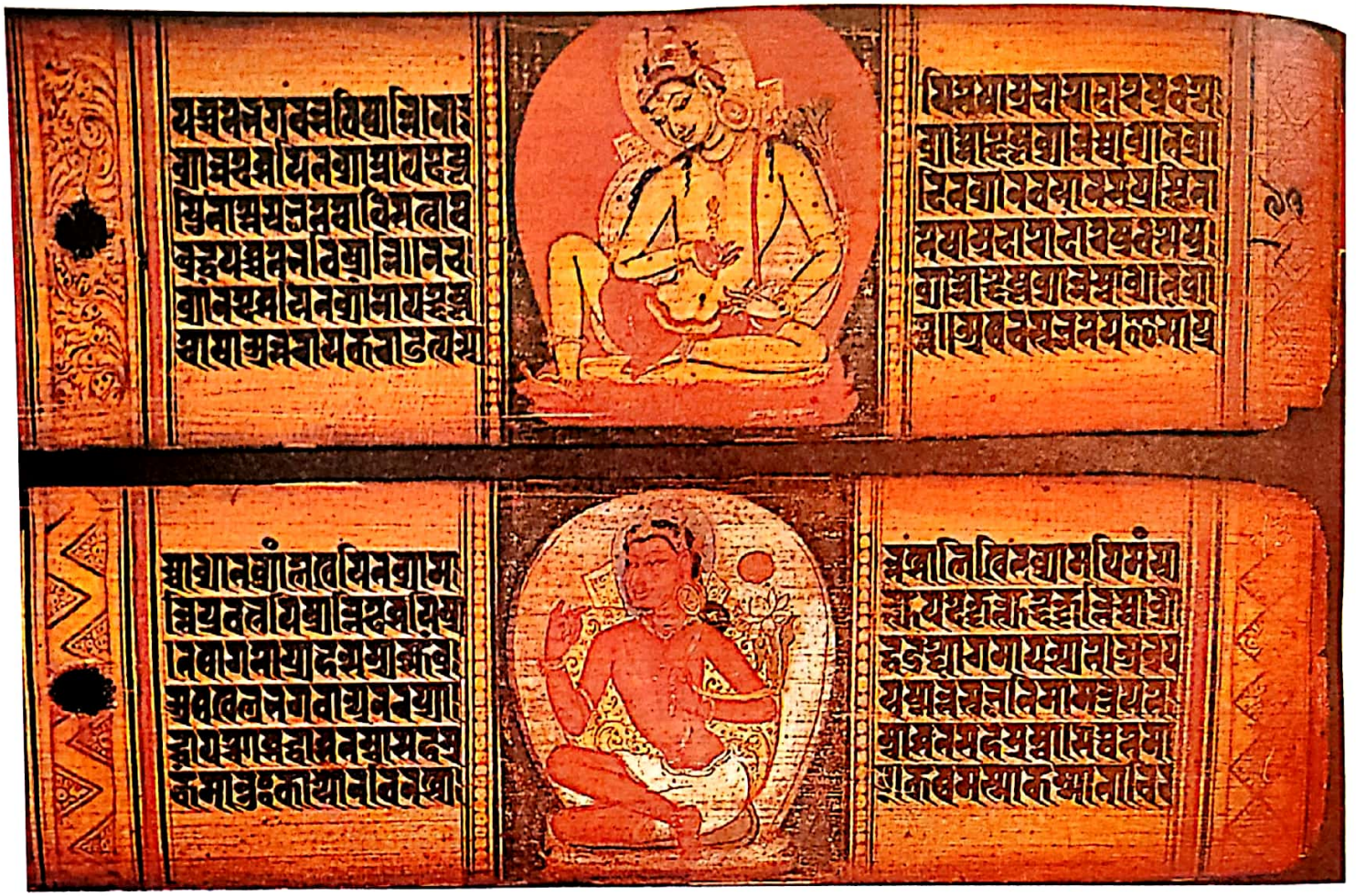

मौखिक परंपरा और भारतीय साहित्य

डॉ चन्द्रशेखर कम्बार

प्राचीन भारत में 'लेखन' एवं 'वाचन' दोनों का चलन था और दोनों का अंतर उनकी कार्यशैलियों को भी स्पष्ट करता है। भारतीय संस्कृति का मूल उस सजीव व्यक्ति में निहित होता है जो ना केवल संस्कृति के मानकों को व्याख्यायित करता है, बल्कि संदर्भ के तौर पर भी क्रियाशील दिखता है। यह मानक तब तक अर्थहीन हैं जब तक यह बोलचाल और क्रियात्मक रूप नहीं लेते और मस्तिष्क, बोली एवं क्रिया को मिलाकर एकीकृत इकाई नहीं बनते।

प्राचीन भारतीय साहित्य का वृहत अंश मौखिक अर्थात बोले गए शब्द की अभिव्यक्ति स्वरूप है और जहां तक उसके संरक्षण का प्रश्न है, वह भी मौखिक परंपरा से संबंध रखता है। सदियों तक चलती आई कठिन और गूढ़ वाचन व्यवस्था के आधार पर एक भी अक्षर को खोए बिना वेदों को संरक्षित रखा गया था। विदेशी बौद्धिकों के आगमन के बाद भारतीय इतिहास में लेखन कला का पदार्पण देखा जाता है और ब्रिटिश शासन तंत्र में जाकर लेखन साहित्य का उद्भव हुआ। हमें यह तथ्य समझना होगा कि लेखन की आवश्यकता को ब्रिटिश अदालतों ने सशक्तता प्रदान की क्योंकि अंग्रेज स्थानीय गवाहों के बयानों पर विश्वास नहीं कर सकते थे। साथ ही, हमें यह भी मानना होगा कि पश्चिमी सभ्यता पुस्तक केंद्रित है, परंतु भारतीय संस्कृति के संदर्भ में पुस्तक वैसा अधिकार एवं प्रभाव नहीं रखती है।

लेखक ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित और साहित्य अकादमी के अध्यक्ष हैं। ईमेल: president@sahitya-akademi.gov.in

Scanned with CamScanner

कुमारव्यास

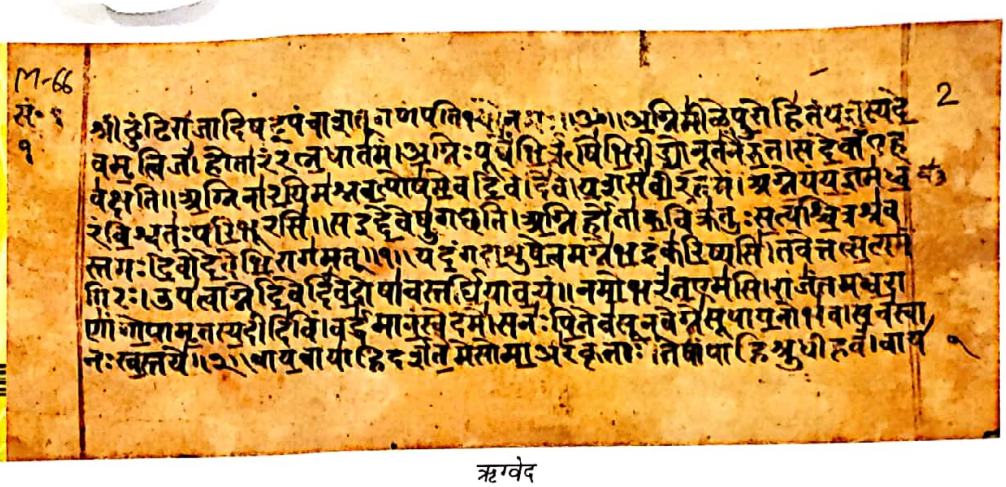

ऋग्वेद

भारतीय संस्कृति का मूर्तरूप एक जीते-जागते व्यक्ति में निहित दिखता है जो ना केवल संस्कृति के प्रतिमानों की व्याख्या करता है बल्कि स्वयं में एक संदर्भ इकाई के तौर पर भी होता है। वह प्रतिमान अथवा मानक तब तक अर्थहीन हैं, जब तक कि उन्हें कम से कम वैचारिक तौर पर मानवीय बोली एवं कृत्यों में परिवर्तित ना किया जाए, और इस संदर्भ में मस्तिष्क, बोली एवं कृत्य एक संयुक्त इकाई के रूप में सामने आते हैं। ऋग्वेद की एक प्रार्थना है, 'वाणी पूर्णतया मस्तिष्क में स्थित है और मस्तिष्क पूर्णतया वाणी में स्थापित है'। अतः, सत्य की अभिव्यक्ति हेतु अधिकार एवं प्रभाव युक्त समेकित व्यक्तित्व ही उपयुक्त कारक होता है।

प्राचीन भारत में 'लेखन' एवं 'वाचन' दोनों पद्धतियां थीं, और दोनों के बीच का बुनियादी अंतर उनके कार्यों को भी व्याख्यायित करता था। लेखक से विमुख होने वाली लेखनी उसके बाद जीवित रहती है और भावी पीढ़ियों द्वारा बांची जाती है। वहीं दूसरी ओर, वाचक के जीवित व्यक्तित्व का हिस्सा दिखने वाली वाक्कला, सजीव दर्शकदीर्घा से साक्षात्कार का अंश बनती है। हमारे बीच 'लिखित' एवं 'मौखिक प्रतिरूपित' काव्य ग्रंथ मौजूद हैं। दसवीं सदी के कन्नड़ कवि पम्पा के कार्यों में लेखकीय चारित्रिक विशेषताएं दिखती हैं। ताड़ पत्तों की भंगुरता के कारण विकृत दिखने वाले आरंभिक छन्दों में पम्पा कहते हैं कि उन्होंने महाभारत के ऐतिहासिक कथ्य की रचना कर उसे विश्व के लिए 'शिलालेख' रूप में तैयार किया है। पम्पा के महाकाव्य की शैली भी लम्बी 'अभिलेखीय' शैलियों से काफी मिलती है।

सदियों तक चलती आई कठिन और गूढ़ वाचन व्यवस्था के आधार पर एक भी अक्षर को खोए बिना वेदों को संरक्षित रखा गया था। विदेशी बौद्धिकों के आगमन के बाद भारतीय इतिहास में लेखन कला का पदार्पण देखा जाता है और ब्रिटिश शासन तंत्र में जाकर लेखन साहित्य का उद्भव हुआ।

अभिलेखन अपने आप में लेखन का विशुद्ध रूप होता है। यह स्थानिक और स्मारक रूपी होता है, जिसका अर्थ कि यह दिक् में निहित और वर्तमान की किसी घटना का गुणगान करने वाला। पम्पा के ग्रंथ का तात्कालिक लक्ष्य उनके संरक्षक-युवराज अरिकेसरी के ऐतिहासिक कार्यों की वंदना से संबद्ध है। यहां भी, पम्पा की कविता 'अभिलेखीय', 'व्याख्यान' एवं 'लेखन' के रूपक अलंकारों से सजी दिखती है। मृत्यु के इंतजार में बाणों की शैय्या पर लेटे भीष्म का वर्णन 'किसी ऐतिहासिक घटना के पाषाण शिलालेख' सा दिखता है। पम्पा कहते हैं कि एक बुरा कवि, लेखक के लिए सिरदर्द और उसकी कविता 'लेखन सामग्री का दुष्प्रयोग' होती है। कौरवों के नायक, जब एक-एक कर गिरते हैं तो पम्पा उनकी वीरगति पर श्रद्धांजलि स्वरूप छोटे स्मृति-लेख लिखते हैं। यह सब साक्ष्य, मौखिक परंपरा में संरक्षित महाभारत के कथानक को लेखकीय रूप में बदलने के पम्पा के प्रयास को दर्शाते हैं। पम्पा उस समय सक्रिय थे जब भारत में प्रादेशिक भाषाओं में लेखन आरंभ ही हुआ था और उस समय लेखन का मुख्य उद्देश्य श्रद्धांजलि स्वरूप लेखन था। पम्पा को समसामयिक इतिहास महाभारत जितना ही रोचक नजर आया और अपनी कविता में उन्होंने दोनों के बीच लाक्षणिक संबंध उद्घाटित किए हैं।

अपनी प्रकृति में लिखित काव्य रचना का रूप, लेखन की स्थानिकता के कारण 'सीमित' होता है। इसका आरंभ, मध्य और अंत होता है। ऐसी कविता का ढांचा सुगठित और इतना सटीक होता है कि

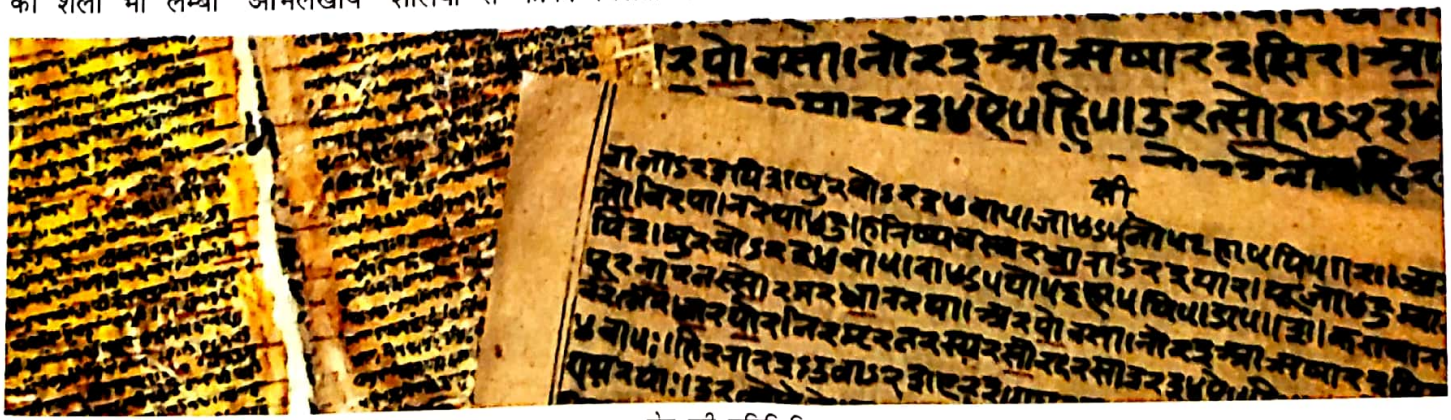

वेद की प्रतिलिपि

Scanned with CamScanner

यदि आप उसमें एक शब्द भी जोड़ें या घटाएं, उसका ढांचा बिगड़ जाता है। कविता का अर्थ उसके ढांचे पर निर्भर करता है और ढांचा अर्थ में सन्निहित है। उदाहरणार्थ, पम्पा का सबसे पसंदीदा रूपक 'सहोक्ति' है, जिसमें एक साथ चल रही दो एक सी घटनाएं निहित हैं। इस आधार पर पम्पा नीलांजने नामक एक नर्तकी के बारे में बताते हैं: ''वह (नीलांजने) मंच पर आई और साथ ही श्रोताओं के दिमाग में भी।'' इन घटनाओं की समकालीनता और उनकी एकरूपता कविता का अर्थ भी उद्घाटित करती है। पम्पा के दो महाकाव्य ऐसी एकरूपता से अटे दिखते हैं - एक दूसरे की बांहों में दम तोड़ते प्रेमी, नफरत करते और एक दूसरे को मारते भाई, हथियारों के इस्तेमाल से उत्तेजित होती शत्रुता एवं अन्य बहुत कुछ। पात्र प्रतिछवियों में अभिव्यक्त होते हैं, घटनाएं पुनरावृत्ति में और इतिहास खुद को दोहराता दिखता है।

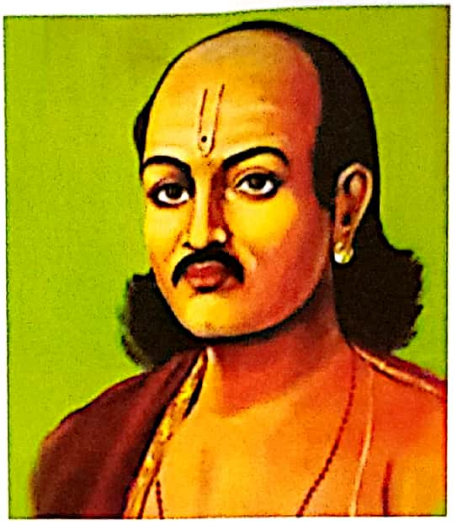

कन्नड़ कवि पम्पा

यह सब काव्यात्मक उपकरण केवल लिखित शब्द में ही संभव हैं। किसी एक घटना को व्याख्यायित करने के उपरांत लेखक कुछ पल रुककर सोच सकता है, और उसके उपरांत ना केवल घटना का वर्णन परंतु उस पर अपनी टिप्पणी भी उपलब्ध करा सकता है, अर्थात् एक प्रक्रिया जिसमें तथ्य एवं उसकी चेतना दोनों समाहित होती हैं। पम्पा इस तथ्य के प्रति सचेत हैं कि कविता का अर्थ उसके पौराणिक अतीत और ऐतिहासिक वर्तमान के सहसंबंध में निहित होता है। कविता के पात्र मूल रूप से महाभारत से संबद्ध हैं, परंतु पम्पा के महाकाव्य में भी वह इस विषय पर सचेत हैं कि वह महाभारत से हैं, यानी जब भीम द्रौपदी के खुले केशों पर कहता है कि 'महाभारत' का आरंभ उसके केशों से होता है। परंतु इस चेतना की अपनी अस्पष्टता है। स्वयं को महाभारत के पात्र कहने वाले चरित्र यह सच भी उद्घाटित करते हैं कि वह महाभारत से नहीं हैं। अरिकेसरी की प्रतिकृति अर्जुन स्पष्ट कहता है कि यदि वह कर्ण का वध नहीं करता तो वह नरसिंह और जकाब्बे का पुत्र नहीं कहलाएगा, जो युवराज अरिकेसरी के असली माता-पिता हैं। मूल महाकाव्य से खुद को दूर करने के प्रयास में पम्पा के पात्र महाकाव्य की मूल भाषा को ही भंग कर डालते हैं। परंतु इससे साबित होता है कि लिखित शब्द में, अतीत और वर्तमान काव्यात्मक संरचना की अशुद्धता और ध्वनि भर हैं।

भारत में मौखिक परंपरा आज भी प्रचलित है, विशेषकर लोक साहित्य में। गाथा गायकों के खजाने में अनेकानेक गीतों की भरमार होती है जिसे वह विशाल दर्शकदीर्घाओं के सामने गाते हैं। तालमाडले समूहों के नाटक किसी नाट्य लिपि के बिना प्रदर्शित किए जाते हैं और 'सन्नता' नामक नाटक बहुत हद तक तात्कालिक रूप से तैयार होते हैं। बेशक लोक कथाएं दादी-नानी से बच्चों तक चलती आई हैं। साहित्य के इस रूप की खासियत इसके खुलेपन में है। वहीं दर्शकों की मांग के अनुसार मौखिक परंपरा के कार्यों की संरचना और वृत्तांत में परिवर्तन आता रहता है। लोककथाओं का संपादन करने वाले प्रो ए के रामानुजन का कहना है, 'रसोईघर में दादी-नानी द्वारा सुनाई गई कहानी, किसी सार्वजनिक स्थान पर एकत्रित वरिष्ठों के समूह को किसी कथावाचक द्वारा सुनाई गई कहानी से फर्क होती है'। दादी-नानी की कहानियों में उल्लिखित राजा और रानियों के नाम नहीं होते, और जब कथावाचक वही कहानी सुनाता है तो सभी पात्र, यहां तक कि पशुओं एवं शस्त्रों के भी नाम होते हैं। लोक कवियों के हाथों में पहुंच कर पौराणिक गाथाओं के विवरण भी बदल जाते हैं। सत्य यह है कि मौखिक परंपरा से संबद्ध किसी छंदोबद्ध विवरण के आकार और व्यापकता की कोई सीमा नहीं रहती। गायक और दर्शकों के थकान से निढाल होने पर ही उनका अंत होता है। लगभग सभी लोकगीत अनंत रचना विस्तार की मरीचिका गढ़ते हैं। ऐसे में कविता की संरचना अप्रत्याशित हो जाती है क्योंकि वह प्रदर्शन के अनुसार रूप लेती जाती है।

लेखन परंपरा में लेखक आमतौर पर अनुपस्थित रहता है जबकि मौखिक परंपरा में वह उपस्थित होता है और इस कारण उसकी काव्य रचना लेखक की शारीरिक रचनात्मक शक्ति पर निर्भर करती है। भक्ति परंपरा की काव्यधारा क्यों मौखिक परंपरा से जुड़ी है, इसी तथ्य से उद्घाटित होता है। भक्ति काव्य ईश्वर को संबोधित होता है जिसकी दिव्यता का उसमें गुणगान दिखता है। भक्तिधारा के कवियों में अनेक प्रबुद्ध हैं, परंतु उनकी काव्यशैली मौखिक परंपरा से जुड़ी है। यहां मैं हरिहर एवं कुमारव्यास के ऐसे केवल दो अद्वितीय उदाहरण रखता हूं। हरिहर की पंक्तियों की धारा अंतहीन है, प्रत्येक पंक्ति अपनी साथी पंक्ति के लिए उद्वेलित दिखती है और सब मिलकर ऐसी छवि निर्मित करती हैं जो सदा अपूर्ण रहती है। यह छवियां अपनी पूर्णता केवल स्वर्ग में प्राप्त करती हैं। इस अनुसार भक्त और उसके इष्ट के कभी ना समाप्त होने वाले संबंध का पता चलता है। हरिहर के काव्य से जुड़ी एक आम शिकायत है कि उनकी पंक्तियां नीरस भाव से चलती हैं। परंतु पंक्तियों की यह एकतान तकनीकी जरूरत है, यानी वह श्रोता का ध्यान अर्थ की गहराई की ओर खींचती है। जाहिर है, हरिहर ने यह कौशल मौखिक परंपरा से सीखा होगा।

भारत में मौखिक परंपरा आज भी प्रचलित है, विशेषकर लोक साहित्य में। गाथा गायकों के खजाने में अनेकानेक गीतों की भरमार होती है जिसे वह विशाल दर्शकदीर्घाओं के सामने गाते हैं। तालमाडले समूहों के नाटक किसी नाट्य लिपि के बिना प्रदर्शित किए जाते हैं और 'सन्नता' नामक नाटक बहुत हद तक तात्कालिक रूप से तैयार होते हैं। बेशक लोक कथाएं दादी-नानी से बच्चों तक चलती आई हैं। साहित्य के इस रूप की खासियत इसके खुलेपन में है।

कुमारव्यास के काव्य में कुछ फर्क है। पम्पा की तरह कुमारव्यास ने भी कन्नड़ में महाभारत की कथा का पुन:कथन का प्रयास किया है। परंतु पम्पा से इतर, उनका प्रयास

Scanned with CamScanner

मौखिक परंपरा के पुनः प्रचलन का था, या फिर कहा जाए तो यह प्रयास लेखन में मौखिक परंपरा के प्रमुख तत्वों का परिचय देने का रहा है। अपने आरंभिक छंदों में से एक में वह चार विशिष्टताओं पर गर्व करते हैं-

1. कविता तैयार करते समय उन्होंने कभी पट्टी या कलम का इस्तेमाल नहीं किया।
2. शब्द लिखने के बाद उसे कभी काटा नहीं।
3. अन्य कवियों की लेखनशैली से कभी प्रेरणा नहीं ली।
4. वह लगातार लिखते थे जिससे कलम और ताड़ पत्तों की ध्वनि सदा सुनाई देती रहे।

हमें नहीं पता कि शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के आधुनिक समय में मौखिक परंपरा का क्या होगा। पूर्ण साक्षरता अभियान की रफ्तार बढ़ी है और हम जानते हैं कि यह मुद्दा पूरी तरह राजनीतिक है। अतः सर्वश्रेष्ठ प्रयास परंपरा के कुछ गुणों को बचाकर ही किया जा सकता है।

जाहिर है, कुमारव्यास प्रमाणित करना चाहते हैं कि वह उत्प्रेरित कवि हैं और उनका काव्य उत्तम श्रेणी का है। परंतु उनके विवरण का ब्योरा आश्चर्यजनक तौर पर अस्पष्ट दिखता है। कुमारव्यास अपनी लेखनशैली को कुछ असामान्य बताते हैं। परंतु लेखन असामान्य इसलिए है क्योंकि उसमें लेखन से इतर वाचन के गुण दिखते हैं। वाचन क्रिया सहज होती है और उनमें रुकावट नहीं होती। परंतु वाचन क्रिया सरीखी इस लेखनशैली का सबसे आकर्षक पक्ष है लेखक द्वारा एक शब्द भी ना हटाना। यों भी बोलते समय आप किसी शब्द को नहीं हटा सकते क्योंकि वाचन अपरिवर्तनीय होता है। वाचन क्रिया समर्पित कार्य है और बोला गया शब्द जिम्मेदारी से परिपूर्ण होता है। ऐसा समाज जहां बोला गया शब्द सर्वोपरि और नैतिक प्रभुत्व रखता है, उस समाज से भिन्न होता है जहां लिखित शब्द को सत्य का दस्तावेज माना जाता है। उक्त समाज में व्यक्ति की पहचान उसके वाचन पर आधारित होती है। ऐसे समाज में विवादों एवं झगड़ों के समय पुस्तकों के स्थान पर बड़े-बूढ़ों के संदर्भ दिए जाते हैं।

संस्कृत के अलावा, अन्य सभी भारतीय भाषाएं जब लेखन श्रेणी तक पहुंची तो लेखन तथा मौखिक परंपराओं से प्रेरणा प्राप्त कर उनका साहित्य विकसित हुआ। भारत में मौखिक परंपरा साक्षरता पूर्व युग से संबद्ध नहीं है जिसे आमतौर पर सभ्यता की प्राथमिक स्थिति माना जाता है। वहीं दूसरी ओर, भारतीय इतिहास के किसी भी दौर में दोनों परंपराएं एक साथ जीवित रही हैं। मौजूदा शताब्दी में भी लोक-परंपराएं जीवित रही हैं। परंपराओं के इस कौतूहलपूर्ण सहअस्तित्व के मुख्य कारण का तथ्य है कि हालांकि आमतौर पर दोनों के मूल्य अलग हैं, परंतु नैतिक रूप से दोनों एक दूसरे से बहुत अलग नहीं हैं। भारत में सांस्कृतिक और आध्यात्मिक अनुभव कभी साक्षरता के मोहताज नहीं रहे। हमारे अनेक रहस्यवादी एवं संत निरक्षर थे, परंतु उन्होंने कलात्मक काव्य रचना की है। नवीं सदी के लेखक नृपतुंग कहते हैं- 'कन्नड़ लोग पढ़ नहीं सकते परंतु वह काव्यकला सृजन में पारंगत हैं।' कथन में छिपे हुए मिथ्याभासी तत्व पर गौर करना होगा। कथन उस अथाह सौंदर्यशास्त्रीय एवं काव्य अनुभवों की संभावना को दर्शाता है जिसका लाभ कोई निरक्षर व्यक्ति भी ले सकता है। इसी तरह, हमारे अनेक संत और रहस्यवादी निरक्षर रहे, परंतु उन्होंने गहरे आध्यात्मिक अनुभवों से युक्त काव्य रचना की।

भारतीय साहित्य में लेखन परंपरा आधुनिक युग में आरंभ हुई क्योंकि सभी लेखक साक्षर रहे हैं। अब सुने जाने की बजाय कविता लिखी जा रही है। लेखन परंपरा का असर आधुनिक काव्यधारा पर छन्दरूप में देखा जा सकता है। एमर्सन के कथन 'छंद नहीं अपितु छंदबद्ध दलीलें कविता का निर्माण करते हैं' को हमारे कवियों ने पूरी निष्ठा से माना और नतीजा रहा कि आजकल सभी कवि छंदमुक्त काव्यरचना कर रहे हैं। अपने काव्य को पुरानी छंद परंपरा से मुक्त कर कवियों ने छंदमुक्तता में पनाह ली है। पुराने छंद हमारी श्रुति क्षमता को पसंद आते थे और चूंकि आज कविता पढ़ी जा रही है, इस कारण उसमें संगीत की गुंजाइश नहीं रही। जहां तक कन्नड़ का प्रश्न है, इसमें मौखिक परंपरा से दो कवियों ने बहुत प्रेरणा ली है और वह हैं, डी आर बेन्द्रे और मैं खुद। अपने काव्य में हमें लोक-छंदों की गूंज सुनाई पड़ती है और इसी कारण वाचन के समय हमारी कविताओं का महत्व बढ़ जाता है।

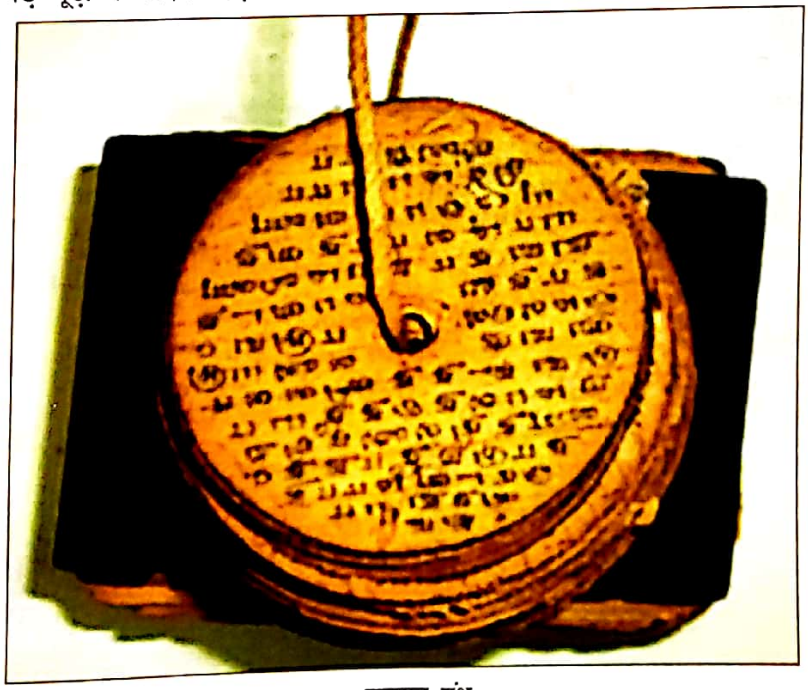

ताड़पत्र ग्रंथ

हमें नहीं पता कि शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के आधुनिक समय में मौखिक परंपरा का क्या होगा। पूर्ण साक्षरता अभियान की रफ्तार बढ़ी है और हम जानते हैं कि यह मुद्दा पूरी तरह राजनीतिक है। अतः सर्वश्रेष्ठ प्रयास परंपरा के कुछ गुणों को बचाकर ही किया जा सकता है। यानी हमारी कुछ धार्मिक पद्धतियां जिसमें वाचन आवश्यक है और ऐसी कुछ कला शैलियां, वाक्पटुता जिनका अभिन्न अंश होती है, काफी कारगर तरीके हो सकते हैं। ■

Scanned with CamScanner

भारतीय साहित्य का उद्भव

डॉ के श्रीनिवासराव

भारतीय साहित्य की हमेशा से अपनी अनूठी शैली रही है। देश में भाषाओं, भाषा परिवारों और बोलियों की संख्या काफी अधिक है। एक हजार से अधिक इन भाषाओं और बोलियों ने लोगों को अपने विचारों, भावनाओं और कल्पनाओं को आगे बढ़ाने के लिए उचित मंच प्रदान किया जिसका परिणाम बेहतरीन साहित्यिक सृजन के उदार मिश्रण के रूप में सामने आया। पिछले लगभग 3000 वर्षों में भारतीय साहित्य की एक बानगी इसकी विविधता है। उप-महाद्वीप में रचित साहित्य की विविधता को देखकर हर कोई आश्चर्यचकित हो जाएगा।

भारत, साहित्य की भूमि है। यह पुरातन समय से ही ऐसा रहा है। जब कोई मानव समाजों और सभ्यताओं के इतिहास का जायजा लेता है, तो पाता है कि यही एक ऐसा क्षेत्र है जहां भारत अन्य सभ्यताओं और समाजों से आगे शीर्ष पर होगा। पिछले लगभग 3000 वर्षों में भारतीय साहित्य की एक बानगी इसकी विविधता है। उप-महाद्वीप में रचित साहित्य की विविधता को देखकर हर कोई आश्चर्यचकित हो जाएगा। इस विविधता की कुंजी भारतीय उपमहाद्वीप की भाषाई बहुलता और किसी भी भाषा या संस्कृति से मिली सभी सभी श्रेष्ठ बातों को ग्रहण करने की लोगों की इच्छा है।

देश में भाषाओं, भाषा परिवारों और बोलियों की संख्या काफी अधिक है। इन हजार से अधिक भाषाओं और बोलियों ने लोगों को अपने विचारों, भावनाओं और कल्पनाओं को आगे बढ़ाने के लिए उचित मंच प्रदान किया, जिसका परिणाम बेहतरीन साहित्यिक रचनाओं के एक उदार मिश्रण के रूप में सामने आया। इसमें हर कोई किसी भी औपचारिक वर्गीकरण पर अधिक ध्यान दिए बिना अपनी स्वयं की साहित्यिक रचना करने में सक्षम था। यही कारण है कि प्रत्येक भाषा में साहित्य का समृद्ध संग्रह हुआ था।

इसे उप-महाद्वीप में फारसी में रचित ग्रंथों से आसानी से समझा जा सकता है। वास्तव में मध्यकाल के दौरान, उप-महाद्वीप में रचित फारसी साहित्य की मात्रा फारस में रचित साहित्य की मात्रा से काफी अधिक थी।

दुनिया के कई हिस्सों में सभ्यता की शुरुआत से बहुत पहले ही भारतीय, साहित्य सृजन में रुचि ले रहे थे और विभिन्न शैलियों में साहित्य की रचना कर रहे थे। जब दुनिया में अन्यत्र लोकप्रिय नई शैलियों भारत में आईं तो इस प्रारंभिक शुरुआत ने भारतीय

लेखक, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली के सचिव हैं। ईमेल: secretary@sahitya-akademi.gov.in

Scanned with CamScanner

साहित्यकारों को अवसर दिया और उन्होंने भी दोनों हाथों से इसे लपक लिया। यह इसलिए हो सका क्योंकि उनकी नींव पहले से ही मजबूत थी, जिससे उनमें शैलियों की विविधता और नवीनता को अपनाने की क्षमता थी। आज, दुनिया भर के लोग आश्चर्यचकित हैं कि सोशल मीडिया पर भारतीय इतना अच्छा कैसे कर रहे हैं।

संक्षिप्तता भारतीयों के जीन में है। यह वह भूमि है जिसने कई शैलियों को जन्म दिया है जिनमें सूत्र साहित्य, तिरुक्कुरल, दोहा जैसे कुछ नाम शामिल हैं। इसलिए, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि भारतीय गूढ़ अभिव्यक्तियों में उत्कृष्ट हैं। हालांकि वे कुछ भी नया नहीं कर रहे हैं लेकिन उन परंपराओं का विस्तार कर रहे हैं जो हजारों वर्षों से विद्यमान हैं।

यह सब कैसे विकसित हुआ? यह बहुत दिलचस्प है। शुरुआती दिनों में कोई पक्के नियम नहीं थे और इसलिए गायन, कविता, नृत्य, दर्शन आदि के बीच कोई विभाजन नहीं था, जैसे कवि (शुरुआती दिनों में इस शब्द का इस्तेमाल द्रष्टाओं को दर्शाने के लिए किया गया था और बाद में इसे कवियों के लिए सीमित कर दिया गया था) सबसे आश्चर्यजनक कविता तथा संगीत (जैसा कि सामवेद में है) और उच्चतम दर्शन (जैसा कि ऋग्वेद में है) की रचना कर रहे थे।

आरंभिक काल से मध्ययुग की शुरुआत तक, भारत का अधिकतर साहित्य मुख्यतः मौखिक, कविता और नाटक विधाओं में था। गद्य की भी रचना की गई लेकिन अधिक जोर कविता पर था। जैसे-जैसे विधाएं व्यापक होने लगीं और साहित्य ने प्रौद्योगिकी, खगोल विज्ञान, कृषि, प्रशासन आदि विषयों पर ध्यान केंद्रित करना शुरू किया, गद्य साहित्य को प्रमुखता मिली।

यह केवल एक भाषा के साथ नहीं है। यदि ये सब उत्तरी क्षेत्रों में हो रहा था, तो दक्षिणी क्षेत्रों में असाधारण कविता और व्याकरण की रचना तमिल में की जा रही थी। इस प्रकार, हम देखते हैं कि शुरुआती संगम कविता न केवल कवि के विचारों और भावनाओं को दर्शाती है, बल्कि उस समय के अत्यधिक सभ्य समाज को भी प्रर्दशित करती है।

यदि भरत ने उत्तर में नाट्य शास्त्र की रचना की तो टोल्कप्पियार ने न केवल व्याकरण, बल्कि कई सामाजिक नियमों के भी आश्चर्यजनक रूप से प्रभावकारी प्रदर्शन का प्रतिपादन किया। ऐसा नहीं है कि भारत में साहित्य की रचना केवल इन भाषाओं में ही हो रही थी। बहुत सी मौखिक परंपराएं पनप रही थीं और गीत, किस्से, कहावतें, किंवदंतियां आदि सभी भाषाओं में आज तक जारी हैं।

आरंभिक काल से मध्ययुग की शुरुआत तक, भारत का अधिकतर साहित्य मुख्यतः मौखिक, कविता और नाटक विधाओं में था। गद्य की भी रचना की गई लेकिन अधिक जोर कविता पर था। जैसे-जैसे विधाएं व्यापक होने लगीं और साहित्य ने प्रौद्योगिकी, खगोल विज्ञान, कृषि, प्रशासन आदि विषयों पर ध्यान केंद्रित करना शुरू किया, गद्य साहित्य को प्रमुखता मिली। फिर, जैसे-जैसे अधिक भाषाओं में लेखन प्रणाली,

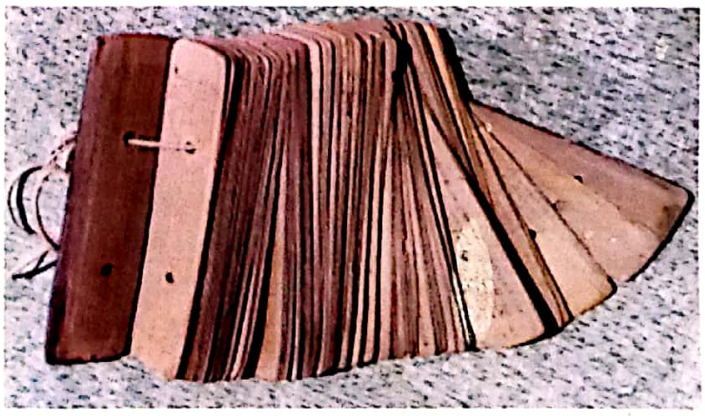

Scanned with CamScanner

व्याकरण इत्यादि प्राप्त हुए तथा लिखित साहित्य को धीरे-धीरे गति मिली और इसने मौखिक साहित्य पर प्रमुखता प्राप्त की। हालांकि मौखिक साहित्य का प्रभुत्व भी बना रहा। भाषाओं तथा बोलियों की बड़ी संख्या और मौखिक परंपराओं के मजबूत आधार के कारण यह आश्चर्य की बात नहीं लगती। मध्यकाल के दौरान बड़ी संख्या में भाषाओं में और मानव प्रयासों के लगभग सभी विषयों पर साहित्य की विविधता का उद्भव इस काल को भारत के स्वर्णिम युग के रूप में दर्शाता हैं।

यह यूरोप और पश्चिम के बिल्कुल विपरीत है, जहां मध्य काल को अंधकार युग के रूप में जाना जाता है। धार्मिक, वैज्ञानिक तथा आर्थिक साहित्य और राजनीति विज्ञान, कविता, नाटक, कहानियां तथा प्रत्येक संबद्ध क्षेत्र ने इस अवधि के दौरान भारत में प्रसिद्धि प्राप्त की।

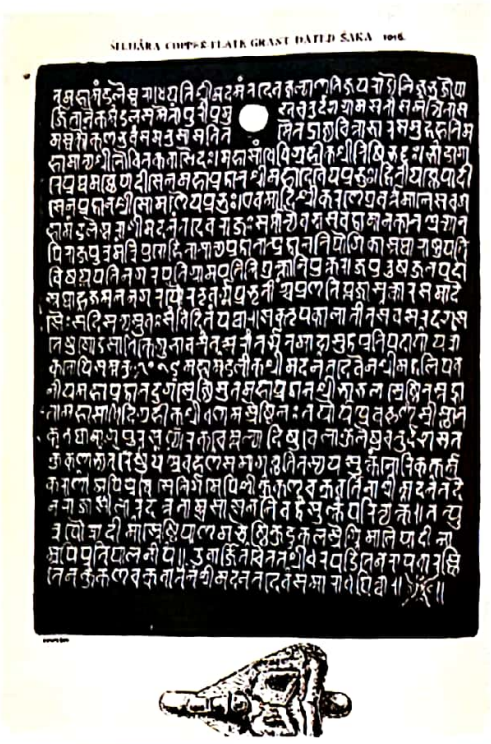

देवनागरी लिपि में संस्कृत भाषा की ग्यारहवीं शताब्दी की शीलहारा तांबे की प्लेट

आज, देश की मौखिक और आदिवासी परंपराओं को महत्व नहीं दिया जाता, लेकिन यह अच्छी तरह याद रखा जाना चाहिए कि मौखिक से लेखन परंपरा तक की प्रक्रिया धीमी गति से चलते हुए साहित्य के उदभव के इस मकाम पर पहुंची है।

प्रिंटिंग प्रेस आने के साथ, समय-समय पर नई-नई लेखन प्रणालियां भी आती गईं और भारतीय साहित्य ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। सब के लिए शिक्षा शुरू किए जाने के साथ, लेखकों और पुस्तकों की संख्या तेजी से बढ़ी। लेकिन, आधुनिक और समकालीन साहित्यिक परिदृश्य में आने से पहले, अनुवाद का सहारा लेना पड़ता है। जब अनुवाद के अनुक्रम की बात आती है तो बाइबल के अनुवादों का उल्लेख किया जाता है जो अधिकतर पिछले 300 वर्षों में हुआ है।

इससे बहुत पहले, कम से कम लगभग 1000 वर्ष पहले भारत में मुक्त रूप से अनुवाद किया जा रहा था। अनुवाद शब्द की भावना के अंतर्गत अधिकांश श्रेण्य ग्रंथों को स्थानीय सांस्कृतिक परिवेश के अनुरूप प्रत्येक क्षेत्र और भाषा के लिए अनुकूलित किया गया था।

ये शाब्दिक अनुवाद नहीं थे, लेकिन मूल ग्रंथों की भावना के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की गई थी। इसलिए, भारत के महाकाव्य- रामायण और महाभारत, उप-महाद्वीप में सबसे अधिक रूपांतरित रचनाओं में शामिल थे।

कई धार्मिक और अन्य ग्रंथों को स्थानीय सांस्कृतिक परिवेश में अनुकूलित और एकीकृत किया गया था। इसका एक मुख्य कारण यह है कि भारत में सांस्कृतिक, भाषाई और साहित्यिक परंपराओं की व्यापक विविधता के बावजूद संस्कृति की एकरूपता या एकसमान संस्कृति का ताना-बाना है।

अनुवाद का यह पहलू, कार्य और भूमिका, केवल भारतीय साहित्य के विकास की पहचान या आधार नहीं है, बल्कि भारतीय संस्कृति की ही देन है। यह एक ऐसा पहलू है जिसे न केवल उपमहाद्वीप के बाहर बल्कि भारत में बहुत कम करके आंका गया है। शुरू से ही भारतीय सभ्यता की बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक प्रकृति को देखते हुए यह दुखद है।

आधुनिक युग की बात करें तो 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी के शुरुआती दौर में, कई भाषाओं के खासकर कहानियों और उपन्यासों के लेखकों ने अपने पश्चिमी समकक्षों का अनुकरण करने की कोशिश की। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि इन दोनों शैलियों को पश्चिम में काफी सफलता मिली थी। इसी अवधि में और 1947 तक एक बहुत ही अनोखे प्रकार के साहित्य - स्वतंत्रता साहित्य का उदय हुआ। लगभग सभी शैलियों, विशेष रूप से गद्य

Scanned with CamScanner

और कविता लेखन कम या ज्यादा देशभक्ति के उत्साह पर केंद्रित थे।

भारत की स्वतंत्रता के बाद के पहले दो दशकों में, जब वह विकास और आधुनिकता के पथ पर अग्रसर हो रहा था, तो कई भाषाओं में कविताओं, कहानियों, उपन्यासों और नाटकों में कृषि समाज को सामने रखते हुए ग्रामीण परिदृश्य पर ध्यान केंद्रित किया। इसमें अपवाद भी थे, लेकिन मुख्य रूप से जोर इसी पर था।

उसके बाद वह दौर आया, जिसमें भारतीय साहित्य का कुछ नए रूप में उदय हुआ। अगले तीन दशकों में रचित कहानियों और उपन्यासों में समाज के सामने आने वाली नई समस्याओं-श्रम संबंधी मुद्दे, महिलाओं की नौकरी संबंधी परेशानियां इत्यादि को उजागर किया गया। वास्तव में, इस अवधि में कहानियों तथा उपन्यासों से प्रेरित कई लोगों और भारतीय सिनेमा का उद्भव भी हुआ।

समकालीन परिदृश्य में, कई नई शैलियां और उप-शैलियां - काल्पनिक, विज्ञान कथा, फ्लैश कथा, नए अवतार में पौराणिक कथाएं, इंस्टाग्राम कविता आदि अस्तित्व में आई हैं।

तेजी से आगे बढ़ती तकनीक और डिजिटल दुनिया ने लेखक और पाठक के बीच की खाई को कम किया है। वास्तव में, इसने कई युवाओं को गंभीरता से साहित्य के प्रति प्रोत्साहित किया है। स्व-प्रकाशन और डिजिटल प्लेटफार्मों ने भी इसमें मदद की है।

नई उप-शैलियों की गुणवत्ता पर चिंता व्यक्त करने वाले स्वर भी सुनाई देते हैं, लेकिन लेखक को लगता है कि यह आने वाले वर्षों में ऐसा नहीं होगा और यह चिंता का विषय भी नहीं है। भारतीय साहित्य ने हमेशा रास्ते में आने वाली छोटी-मोटी रुकावटों के बावजूद स्वयं को फिर से मजबूत करने के नए तरीके खोजे हैं। लेखक को विश्वास है, भारतीय साहित्य आने वाले दशकों तथा शताब्दियों में और अधिक चमकेगा।

बाल साहित्य का उभरना सभी को प्रसन्न होने के लिए बाध्य करता है। हालांकि, कविता प्रकाशन कम हो रहा है, अधिक से

अधिक प्रकाशक बाल साहित्य की ओर आकर्षित हो रहे हैं। ऐसा इसलिए भी है कि भारत वास्तव में एक युवा देश है, यहां की जनसंख्या में युवाओं की संख्या काफी अधिक है।

यहां तक कि इस शैली में, एक भाषा से दूसरी भाषाओं में अनुवाद भी रुचिकर होता है। इसमें कोई संदेह नहीं है, पश्चिम में हैरी पॉटर और युवा पाठकों के लिए अन्य साहित्य और बाद में इसके अनुवाद ने इसकी लोकप्रियता और सफलता में विशेष रूप से सहायता की है। भारतीय साहित्य की हमेशा से अपनी अनूठी शैली रही है। बीस साल पहले की धारणा के विपरीत, भारतीय साहित्य ने पश्चिमी शैली को नहीं अपनाया और कई भाषाओं में बड़ी संख्या में पौराणिक कथाओं की रचना को प्रमुखता दी और 21वीं सदी की संवेदनाओं के अनुरूप इसे प्रस्तुत करना इसका एक उदाहरण है।

उपन्यास हों या कहानियां या कविताएं या नाटक, भारतीय साहित्य सब में बहुत मजबूत हो रहा है। उम्मीद की तुलना में प्रक्रिया धीमी हो सकती है, लेकिन यह निरंतर नई उंचाइयों को छूता रहेगा, क्योंकि कहा जाता है कि दौड़ वही जीतता है जो भले ही धीरे चले लेकिन निरंतर आगे बढ़ता रहे।

उपन्यास हों या कहानियां या कविताएं या नाटक, भारतीय साहित्य सब में बहुत मजबूत हो रहा है। उम्मीद की तुलना में प्रक्रिया धीमी हो सकती है, लेकिन यह निरंतर नई उंचाइयों को छूता रहेगा, क्योंकि कहा जाता है कि दौड़ वही जीतता है जो भले ही धीरे चले लेकिन निरंतर आगे बढ़ता रहे। ■

Scanned with CamScanner

विश्व पटल पर भारतीय साहित्य

डॉ निशात ज़ैदी

तेजी से वैश्विक हो रही दुनिया में भारतीय साहित्य की परिकल्पना हम कैसे करते हैं, जहां पूंजी, प्रौद्योगिकी, लोगों, सूचनाओं और विचारों के प्रवाह (अप्पादुरई, 1996) ने मूल के बजाय पहचान की विचार छवि को प्रस्तुत किया है, जहां पहले से ही विदेशी प्रभावों ने राष्ट्र को स्वयं की पहचान की प्रस्तुति पर अपने नियंत्रण से वंचित कर दिया है? क्या भारतीय साहित्य विश्व साहित्य में अपना स्थान बनाने के योग्य है? विभिन्न 'संपर्क क्षेत्रों' के साथ भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य से विश्व साहित्य का ज्ञानात्मक मूल विचार क्या हो सकता है। (प्राट्ट: 1991: 34)

भारतीय साहित्य बहुभाषी, बहु-क्षेत्रीय और बहुसांस्कृतिक होने के नाते, अपने दृष्टिकोण में भी विविध हैं। बहुलता, तुलनात्मकता, अनुवाद और बहुभाषावाद (रोसेला सिओका और नीलम श्रीवास्तव, 2017) द्वारा परिभाषित और निर्धारित, भारतीय साहित्य, विश्व साहित्य (त्रिवेदी, 2007, 125-127, सुजीत मुखर्जी, 1981) को अपना मॉडल प्रदान करने की स्थिति में है, जिसमें विश्व साहित्य के प्रभुत्व को समाप्त करने की क्षमता है। यहां समकालीन समय में भारतीय साहित्य को विश्व साहित्य के सान्निध्य में चार प्रमुख विशेषताओं - बहुभाषिता, अनुवाद, तुलनात्मकता, और वैश्विक तथा स्थानीय चिंताओं के बीच उनके प्रतिमान के आधार पर रेखांकित किया गया है।

डेविड डामरॉश का तर्क है कि विश्व साहित्य साहित्यिक कार्यों का हमेशा बदलता हुआ संग्रह है जो एक से दूसरी राष्ट्रीय परंपरा में अवशोषित हो जाते है: ... रचनाएं किसी विदेशी संस्कृति में स्थान पाने से विश्व साहित्य बन जाती हैं। इस स्थान को मेजबान संस्कृति की राष्ट्रीय परंपरा और उसके अपने स्वयं के लेखकों की वर्तमान आवश्यकताओं द्वारा कई मायनों में परिभाषित किया जाता है। (डमरोस, 2003) हालांकि, विभिन्न गैर-पश्चिमी मूल के समालोचकों ने विश्व-साहित्य के शाही, नव-औपनिवेशिक, पश्चिम-केंद्रित एजेंडे की पहचान की है जो यूरोपीय-अमेरिकी

लेखिका नई दिल्ली के जामिया मिलिया इस्लामिया में अंग्रेजी विभाग की प्रमुख और प्रोफेसर हैं। ईमेल: nishatzaidi@hotmail.com

Scanned with CamScanner

सैद्धांतिक संरचनाओं और अंग्रेजी भाषा में लेखन के अपने विशेषाधिकार के द्वारा सीमा व्यवस्थाओं को बढ़ावा देता है। (आमिर मुफ्ती 2016, रेवती कृष्णस्वामी, 2010)।

विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य एक-दूसरे से और स्थानीय संरचनाओं, मिथकों तथा मौखिक परंपराओं से उतना ही प्राप्त करते हैं, जितना वे अंग्रेजी भाषी पश्चिम के साथ पारस्परिक प्रभाव से हासिल करते हैं। वास्तव में, भारत में अंग्रेजी लेखन रोजमर्रा की जिंदगी की स्थानीय संरचना से उसी प्रकार ग्रहण करता है जिस प्रकार भाषा साहित्य, औपनिवेशिक व्यवस्था के आधुनिकतावादी एजेंडे और औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली तथा औपनिवेशिक आधुनिकता के साए के नीचे अंग्रेजी के साथ उनके पारस्परिक प्रभाव से ग्रहण करता है। उदाहरण के लिए, भारत में उपन्यास की शैली को पहले भाषाओं- मलयालम, ओडिया, मराठी, बांग्ला में और बाद में अंग्रेजी में आजमाया गया था।

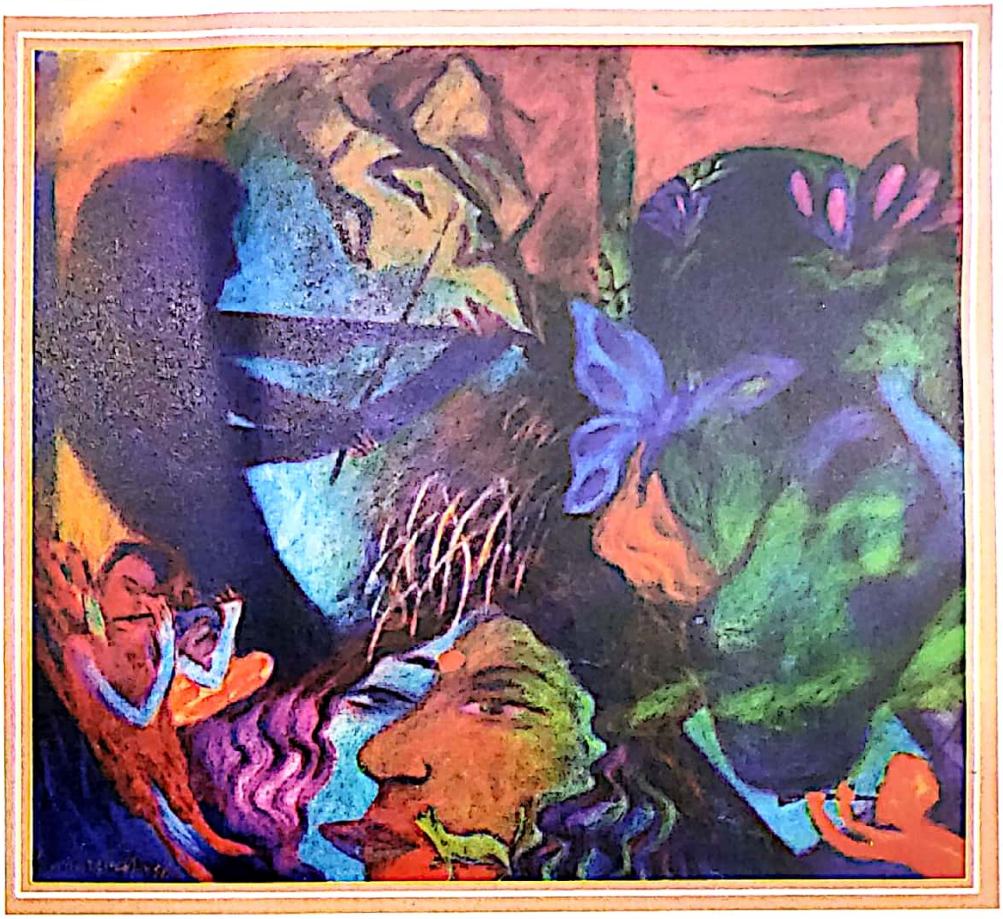

इस पर विचार करते हुए कि औपनिवेशिक समय के दौरान भाषाओं में सुधार और असम्मति की महत्वपूर्ण प्रस्तुति की गई थी, यह दावा झूठा साबित होता है कि अंग्रेजी साहित्य में वैश्विक चिंताओं की अभिव्यक्ति की जाती है और भारतीय भाषाओं का साहित्य स्थानीय चिंताओं, सांस्कृतिक जड़ों और संकीर्ण सामाजिक विचारों पर केंद्रित है। इसी प्रकार के झूठे दावों से प्रेरित होकर सलमान रुश्दी जैसे विद्वानों ने पक्षपाती दावा किया है कि अंग्रेजी में रचना कर रहे भारतीय लेखकों द्वारा इस अवधि के दौरान रचित गद्य लेखन - कथा और गैर-कथा दोनों ही, इसी समय के दौरान तथाकथित स्थानीय भाषाओं-भारत की 16 आधिकारिक भाषाओं में रचित रचनाओं की तुलना में मजबूत और महत्वपूर्ण साबित हो रहे हैं। इसी समय के दौरान निस्संदेह यह नया और तेजी से बढ़ता हुआ भारतीय-अंग्रेजी साहित्य दर्शाता है कि फिर भी संभवतः भारत ने पुस्तकों की दुनिया में सबसे मूल्यवान योगदान किया है। (रुश्दी, 1996)

बहुभाषावाद संभवतः विश्व साहित्य की तुलना में अधिक बहुलतावादी और विश्ववादी तरीकों से भारत के साहित्यिक परिदृश्य को परिभाषित करने वाला चिन्हक है। अधिकांश भारतीय लेखक द्विभाषी या बहुभाषी हैं। कई लेखकों ने अंग्रेजी के साथ-साथ अन्य भाषाओं में भी रचनाएं की हैं जैसे कि माइकल मधुसूदन दत्त, हेनरी एल डेरोजियो, तोरु दत्त, कृपाबाई सथियानादन, रवींद्रनाथ टैगोर, अहमद अली, गिरीश कर्नाड, अरविंद अदिगा और कई अन्य। किरण नागरकर ने अपना पहला उपन्यास, सात सक्कम त्रेचालिस (सात छक्के तिरतालीस, 1974) मराठी में लिखा था, और बाद में वे अंग्रेजी में लिखने लगीं। कुर्रतुलैन हैदर ने अपनी रचनाओं का अनुवाद किया, जिनमें उनके द्वारा अंग्रेजी में अनुदित उनका प्रसिद्ध उर्दू उपन्यास आग का दरिया भी शामिल है। लेखकों द्वारा चुने गए भाषाई विकल्प उनसे संबंधित बहु भाषाई सांस्कृतिक जगत में उनके काम पर बहुपरती संवेदनाओं में उनकी संलिप्तता को दर्शाते हैं। अहमद अली ने उर्दू साहित्यिक क्षेत्र में उसी प्रकार योगदान दिया जिस प्रकार उन्होंने भारत में अंग्रेजी साहित्यिक क्षेत्र में दिया। राजा राव ने अंग्रेजी के साथ- साथ कन्नड़ और फ्रांसीसी में भी लिखा। यही नहीं, एक से अधिक भारतीय भाषाओं में लिखने वाले लेखक भी इस उभयवृत्ति से मुक्त नहीं थे। उदाहरण के लिए, प्रेमचंद ने उर्दू और हिंदी में अपनी रचनाओं में कई सामाजिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की।

भारतीय साहित्य का अखंड दृष्टिकोण पहले से ही औपनिवेशिक समय के बाद चुनौती बना हुआ है। विद्वानों में एक आम सहमति है कि तथाकथित क्षेत्रीय साहित्य अपनी अभिविन्यास और भाषा के उपयोग में एकाधिक है।

भारतीय साहित्य का अखंड दृष्टिकोण पहले से ही औपनिवेशिक समय के बाद चुनौती बना हुआ है। विद्वानों में एक आम सहमति है कि तथाकथित क्षेत्रीय साहित्य अपनी अभिविन्यास और भाषा के उपयोग में एकाधिक है। इसलिए, तुलनात्मक प्रतिमान जो प्रत्येक भाषा की साहित्यिक परंपरा के एकीकरण के रूप में परिभाषित करते हैं, उन्हें भाषा साहित्य में कई जटिल, विवादास्पद और दोहरे स्वर वाले तर्कों में वांछित होना पाया गया है। ओडिया लेखक फकीर मोहन

Scanned with CamScanner

सेनापति (1843-1918) के पैरोडिक स्वर या मलयालम लेखक वैक्कम मुहम्मद बशीर (1928-1994) की क्रांतिकारी विश्वव्यापकता, हिंदी लेखक श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्यपूर्ण अंदाज या मंटो के व्यंग्यपूर्ण परिहास के साथ आलोचनात्मक यथार्थवाद को इनके लेखन में सन्निहित उपविषयों की परतों को बाहर लाने के लिए संवादपूर्ण दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। हमें इन लेखकों के संदर्भों में साहित्य को परिभाषित करने के लिए नए प्रतिमानों की आवश्यकता है जो किसी भी आयातित वैचारिक प्रतिमान के प्रति प्रवृत्त न हों।

विश्व साहित्य की ही तरह, बहुभाषावाद भारतीय साहित्य के लिए अनुवाद की केंद्रीयता की ओर ले जाता है। मलयालम के सबसे पुराने श्रेण्य ग्रंथों में से एक, चेम्मीन, दक्षिण भारतीय उपन्यासों में पहला उपन्यास है जिसका अनुवाद किया गया और इसे काफी प्रशंसा मिली। कई बड़े कवि और अनुवादक संस्कृत और प्राकृत में कविता संग्रहों का अनुवाद कर रहे हैं। अरविंद कृष्ण मेहरोत्रा की द एब्सेंट ट्रैवलर (1991) प्राकृत भाषाओं की कविताओं का अंग्रेजी में अनुवाद है, जबकि हाल में गोपाल कृष्ण गांधी का तिरुवल्लुवर का अनुदित संस्करण तिरक्कुरल (2019), भाषा साहित्य के विशाल खजाने में अंग्रेजी के भारतीय कवियों और लेखकों की बढ़ती रुचि की पुष्टि करता है। अब वे दिन लद चुके हैं जब केवल टैगोर और प्रेमचंद जैसे साहित्यकारों की रचनाओं का ही अनुवाद किया जाता था और दक्षिण, उत्तर पूर्व तथा आदिवासी समाजों के जटिल साहित्य का एक बड़ा हिस्सा विशेष ध्यान आकर्षित नहीं कर पाता था। यू आर अनंतमूर्ति द्वारा अनूदित संस्कार, गिरीश कर्नाड, मलयालम लेखकों ओ वी विजयन और बशीर की अनूदित कृतियों को मिली अत्यधिक लोकप्रियता इसका स्पष्ट उदाहरण है।

विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य एक-दूसरे से और स्थानीय संरचनाओं, मिथकों तथा मौखिक परंपराओं से उतना ही प्राप्त करते हैं, जितना वे अंग्रेजी भाषी पश्चिम के साथ पारस्परिक प्रभाव से हासिल करते हैं। वास्तव में, भारत में अंग्रेजी लेखन रोजमर्रा की जिंदगी की स्थानीय संरचना से उसी प्रकार ग्रहण करता है जिस प्रकार भाषा साहित्य, औपनिवेशिक व्यवस्था के आधुनिकतावादी एजेंडे और औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली तथा औपनिवेशिक आधुनिकता के साए के नीचे अंग्रेजी के साथ उनके पारस्परिक प्रभाव से ग्रहण करता है। उदाहरण के लिए, भारत में उपन्यास की शैली को पहले भाषाओं - मलयालम, ओडिया, मराठी, बांग्ला में और बाद में अंग्रेजी में आजमाया गया था।

भाषा साहित्य अब भारत के बाहर भी पुरस्कार प्राप्त कर रहा है और अंग्रेजी बोलने वाले भारतीयों का साहित्यिक दंभ अब आक्रामक नहीं है (नीलांजना रॉय, 2016)। भाषा साहित्य की स्थानीय संरचना के अनुवाद की योग्यता न होने की पूर्व स्थापित धारणा भी तेजी से बदल

Scanned with CamScanner

रही है। हाल में अमेरिका में प्रकाशित विवेक शानबाग के कन्नड़ उपन्यास घचर घोचर का श्रीनाथ पेरूर का अंग्रेजी अनुवाद इसका स्पष्ट उदाहरण है। इसने 2017 में न्यूयॉर्क टाइम्स की अनुशंसित पुस्तकों की सूची में जगह बनाई। यहां तक कि भारतीय अंग्रेजी लेखक भी स्वदेशी साहित्यिक परंपराओं के प्रति सतर्क हैं। उदाहरण के लिए, बुकर पुरस्कार जीतने वाले लेखक अरविंद अडिगा की कन्नड़ साहित्य की रचनाएं पाठकों को बहुत आकर्षित करती हैं, विशेषकर बिट्वीन दी असेसिनेशन्स (2009) में उसी प्रकार अलग-अलग क्षेत्रीय व्यंजनाएं हैं, जिस तरह अमित चौधरी, पंकज मिश्रा, अनुजा चौहान और कुछ अन्य के लेखन में। इस श्रृंखला में अन्य उदाहरण चारु निवेदिता की ज़ीरो डिग्री या तमिल पल्प फिक्शन की द ब्लास्ट बुक हैं।

वर्षों से भारतीय साहित्यकारों ने ज्ञान विन्यास के द्वारा पश्चिमी ज्ञानवाद के सार्वभौमिक दावों की सीमाओं को उजागर किया है, जो बहुभाषी और छिद्रपूर्ण हैं, और जहां स्थानीय तथा वैश्विक का द्वन्द्व नहीं हैं। इतने अधिक मलयालम, मराठी, कन्नड़, हिंदी और उर्दू लेखकों के लेखन में वैश्विक चिंताओं से कौन इनकार कर सकता है? ऐतिहासिक रूप से स्थापित ज्ञान से आगे बढ़ते हुए, हाल के दिनों में भारतीय साहित्यकारों ने खुले मन, विभिन्न सांस्कृतिक विचारों के आदान प्रदान (रेवती कृष्णास्वामी, 144) और ज्ञान की संभावनाओं के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। दलित तथा आदिवासी लेखन में उभरते परिवर्तनों और महिलाओं की आवाज ने पहचान, संस्कृति और राष्ट्र के एकात्मक विचारों का मुकाबला किया है। बहुभाषी आधुनिकता को दलित नारीवादी लेखकों जैसे कि बामा, मीना कांदास्वामी, पी सिवाकामी और उर्मिला पवार द्वारा स्पष्ट किया गया है, जो समरूप भारतीय नारीवाद के आख्यानों को अस्थिर करती हैं। कृष्णा सोबती के बहुगुणित उपन्यासों का कई भाषाओं में अनुवाद किया गया, जिनमें देश की लैंगिक अवधारणा के संबंध में प्रश्न उठाए गए थे। अमिताव घोष, अरुंधति रॉय और महाश्वेता देवी के लेखन ने स्वदेशी और आदिवासी लोगों की नवउदारवादी ताकतों के प्रतिरोध की अग्रगामिता द्वारा सार्वभौमिक पर्यावरणवाद के विचार को समस्याग्रस्त किया है। विजयदान देथा, हेइसनाम कन्हैयालाल जैसे लेखक आधुनिक साहित्य पर लोकवार्ता विज्ञान की संवेदनाओं को अभिव्यक्त करते हैं।

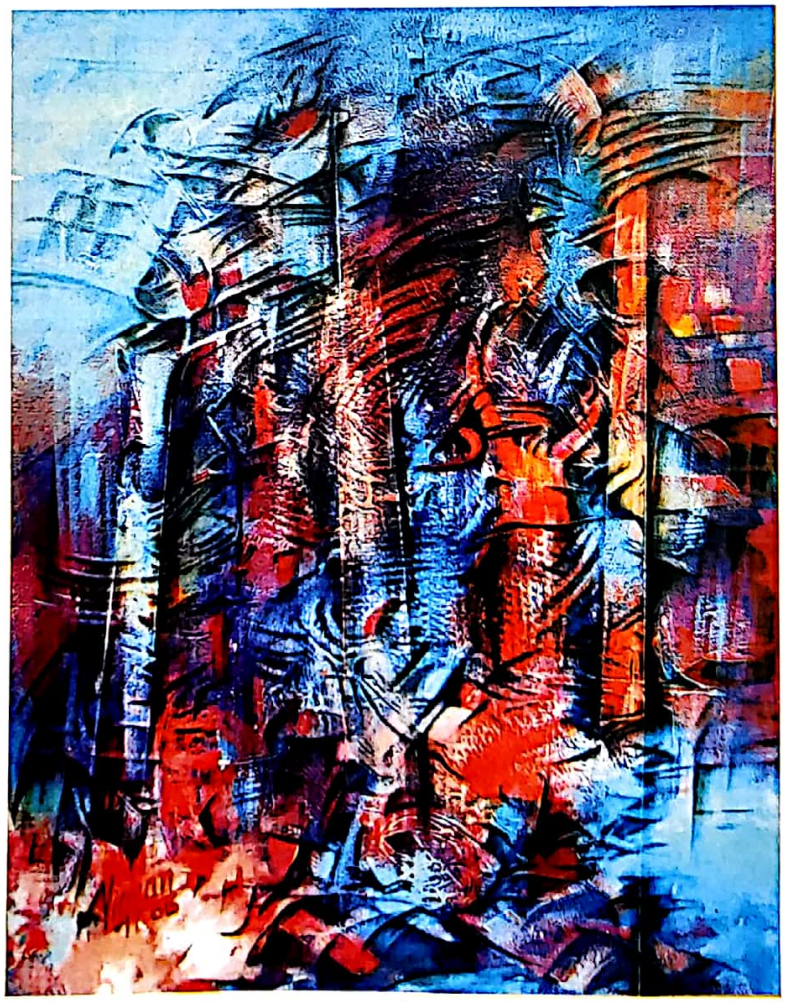

बेहतर अवसरों की तलाश में चेतन भगत और अरविंद अडिगा जैसे लेखकों की स्वदेश वापसी इसका उदाहरण है कि भारत में उदारीकरण के बाद की अर्थव्यवस्था में, अब प्रवासी बनने का सफर पूर्व से लेकर पश्चिम तक, संघर्ष से लेकर अवसर तक, बंधन से लेकर स्वतंत्रता तक का नहीं है। प्रवास अब केवल भारतीय मूल के अंग्रेजी के लेखकों के लिए ही नहीं रह गया है। इसका ताजा उदाहरण नॉर्वे में बसे हिंदी लेखक प्रवीण कुमार झा का है, जिनके हिंदी उपन्यास कुली लाइन्स (2019) में करारबद्ध मजदूरों के जीवन की पड़ताल की गई है।

यहां तक कि पुस्तक प्रकाशन के संदर्भ में, अधिकांश अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक भारतीय भाषा प्रकाशन में आगे बढ़ रहे हैं और भारत में अपने कार्यालय खोल रहे हैं। एक समय ऐसा भी था जब भारतीय अंग्रेजी लेखक केवल अपनी रचनाओं को प्रकाशित कराने के लिए इंग्लैंड जाया करते थे। अब, अंग्रेजी भाषा के उपन्यासकार जैसे अनुजा चौहान, चेतन भगत और अमीश त्रिपाठी भारत के बाहर अपनी पुस्तकों के प्रकाशन के लिए लालायित नहीं रहते। अंग्रेजी भाषा के अनुवादकों और लेखकों दोनों ने पश्चिम के पाठकों को सांस्कृतिक चिह्नकों की व्याख्या करने वाली विस्तृत शब्दावलियों के बगैर विश्वास हासिल किया है। दूसरे शब्दों में, भारतीय भाषाओं की संकीर्णता के विपरीत अंग्रेजी की सर्वदेशीयता का मिथक काफी हद तक भंग हो चुका है।

इक्कीसवीं सदी के भारत में अंग्रेजी तथा भाषाओं के बीच परिवर्तित होते और जटिल संबंधों के कारण उकसाने से और बदली हुई सामाजिक तथा सांस्कृतिक गतिशीलता से पोषित इन नई साहित्यिक पुनरावृत्तियों ने भारतीय साहित्य के परिदृश्य को बदल दिया है। विविध और यहां तक कि उभयभावी महत्वाकांक्षी क्षेत्रों में काम करते हुए तथा बाहर दृष्टिपात के साथ -साथ आंतरिक अनुभूति करते हुए, भारतीय साहित्य क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विद्यमान हैं। यह अपनी पॉलीफोनी और विविधता में, हमें हमारे गहन रूप से बाधित पूर्वाग्रहों को अनसुना करने के लिए आमंत्रित करके (भटनागर और कौर, एनपी) विश्व साहित्य के आधिपत्य को समाप्त करने की अवधारणा का एक आदर्श प्रस्तुत करता हैं और सोच के नए तरीकों से अवगत कराता है। ■

Scanned with CamScanner

भारत की आज़ादी और हिन्दी साहित्य

मैनेजर पाण्डेय

साहित्य का इतिहास हमेशा समाज के इतिहास का प्रतिबिंब नहीं होता। साहित्य कभी सामाजिक-राजनैतिक परिवर्तनों को प्रतिबिंबित करता है तो कभी-कभी वह सामाजिक-राजनैतिक परिवर्तनों की संभावनाओं की अभिव्यक्ति भी करता है। भारत जब सन् 1947 में आज़ाद हुआ तो हिन्दी साहित्य में बहुत बड़ा नया मोड़ नहीं आया। हिन्दी साहित्य की रचनाशीलता के विभिन्न रूपों में जो प्रवृत्तियां 1947 से पहले मौजूद थीं वे ही थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ आगे भी चलती रहीं।

सन् 1947 में जब देश आज़ाद हुआ तो आज़ादी के साथ एक ओर हर्ष और उल्लास का, आशा और उम्मीद का वातावरण बना पर उसके साथ ही गहरे विषाद और दुःख का माहौल भी मौजूद था। जिस आज़ादी के लिए भारत की जनता ने लगभग सौ वर्षों तक संघर्ष किया, उसके आने के साथ हर्ष और उल्लास का होना स्वाभाविक था पर साथ ही भारत का जो हिंदुस्तान और पाकिस्तान के रूप में विभाजन हुआ, लाखों भारतीयों का विस्थापन और पलायन हुआ और भीषण सांप्रदायिक दंगों में असंख्य हत्याएं हुईं। उसके परिणामस्वरूप देश की जनता गहरे शोक और विषाद में डूब गई। आज़ादी मिलने के सालभर के भीतर ही महात्मा गांधी की हत्या हुई जो भारत के लिए एक बड़ी ट्रेजेडी थी और शर्मनाक घटना भी। इस सबकी अभिव्यक्ति हिन्दी साहित्य में हुई।

देश के विभाजन और सांप्रदायिक दंगों के दौरान जो हिंसा और हैवानियत के दृश्य सामने आए उनसे जनमानस क्षुब्ध हो उठा। इस क्षोभ की अभिव्यक्ति हिन्दी के कुछ लेखकों की रचनाओं में हुई। ऐसे लेखकों में सबसे उल्लेखनीय हैं अज्ञेय। अज्ञेय ने विभाजन की त्रासदी पर 12 अक्तूबर 1947 से 12 नवंबर 1947 के बीच ग्यारह कविताएं लिखीं। ये कविताएं अज्ञेय ने हिन्दी क्षेत्र के विभिन्न शहरों में रहते हुए लिखी थीं। उन कविताओं के साथ ही उन्हीं दिनों अज्ञेय ने विभाजन की त्रासदी पर अनेक कहानियां भी लिखीं। अज्ञेय की 'शरणार्थी' शीर्षक से लिखी कविताएं और सांप्रदायिक तनाव और हिंसा से भरपूर वातावरण पर लिखी उनकी कहानियां 1948 में छपी 'शरणार्थी' नामक पुस्तक में मौजूद हैं। गांधी की हत्या से उपजे क्षोभ और उनके महत्व की अभिव्यक्ति नागार्जुन, दिनकर, हरिवंश राय बच्चन, सोहन लाल द्विवेदी, भवानी प्रसाद मिश्र आदि कवियों की कविताओं में हुई।

आज़ादी के पहले से ही हिन्दी कविता में दो प्रवृत्तियां परस्पर टकराती हुई चल रही थीं। एक ओर प्रगतिशील कविता थी जिसके प्रमुख कवि थे– नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, दिनकर, मुक्तिबोध, शमशेर आदि। दूसरी ओर अज्ञेय के नेतृत्व में प्रयोगवादी कविता

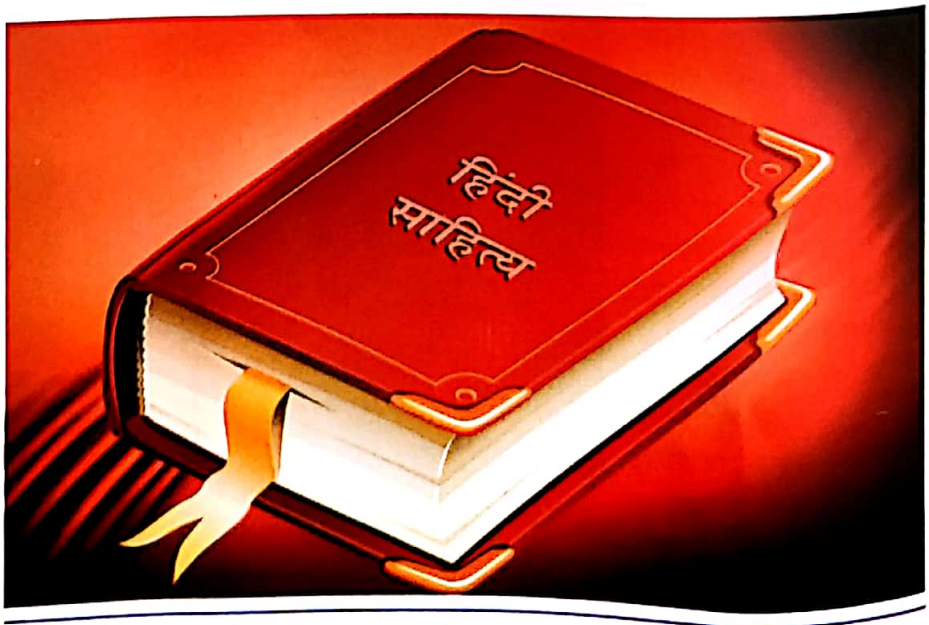

लेखक वरिष्ठ साहित्यकार हैं। यह रचना प्रकाशन विभाग की साहित्य एवं संस्कृति की हिंदी मासिक पत्रिका 'आजकल' के अमृत महोत्सव अंक (जनवरी-फरवरी 2020 संयुक्तांक) से ली गई है।

Scanned with CamScanner

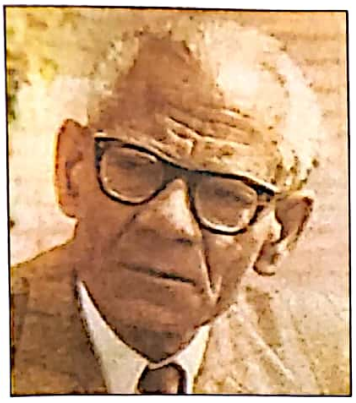

यशपाल

महादेवी वर्मा

रामधारी सिंह दिनकर

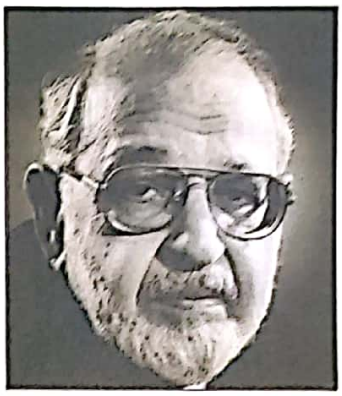

सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन 'अज्ञेय'

आगे आ रही थी जिसकी शुरुआत 'तारसप्तक' (1943) से हुई और 'दूसरा सप्तक' (1951) के प्रकाशन के साथ वह नई कविता के नाम से स्थापित होने लगी।

हिन्दी साहित्य की गद्य विधाओं में उपन्यास और कहानी का जो विकास स्वातंत्र्योत्तर युग में हुआ उसमें भी इन दोनों प्रवृत्तियों का टकराव दिखाई देता है। एक ओर जहां यशपाल, भीष्म साहनी, अमरकांत, शेखर जोशी, राही मासूम रज़ा, फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि लेखक थे तो दूसरी ओर अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी, जैनेंद्र, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, कमलेश्वर आदि थे।

आज़ादी के बाद हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं में आंदोलनों का एक दौर आया जिसमें एक ओर नई कविता और नई कहानी का उत्थान हुआ तो दूसरी ओर प्रगतिशील और जनवादी कथा लेखन और कविता का विकास हुआ।

आज़ादी के बाद हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं में आंदोलनों का एक दौर आया जिसमें एक ओर नई कविता और नई कहानी का उत्थान हुआ तो दूसरी ओर प्रगतिशील और जनवादी कथा लेखन और कविता का विकास हुआ। इन्हीं प्रवृत्तियों के साथ कथा साहित्य में आंचलिकता का भी उभार हुआ जिसके प्रमुख रचनाकार थे फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, शिवप्रसाद सिंह आदि।

पचास का दशक भारतीय समाज और हिन्दी साहित्य दोनों में स्थिरता, विकास और विविधता का दौर है। एक ओर राजनैतिक संदर्भ में देश में संविधान लागू हुआ तथा उसके साथ ही लोकसभा तथा विधानसभाओं के चुनाव हुए जिससे देश में लोकतंत्र स्थापित हुआ। हिन्दी साहित्य में नई प्रवृत्तियों का विकास हो रहा था। आधुनिकता तथा आधुनिक भावबोध की चर्चा होने लगी जिसकी अभिव्यक्ति के प्रमाण के रूप में नई कविता और नई कहानी के आंदोलन सामने आए। इन दोनों विधाओं के नए विकास को स्थापित करने वाले लेखकों में कविता के क्षेत्र में एक ओर सप्तकों की परंपरा आगे बढ़ी जिनके माध्यम से अनेक नए कवि सामने आए। इन कवियों की रचनाओं में एक ओर सामाजिकता का नया रूप सामने आया तो दूसरी ओर रोमानियत की भी अभिव्यक्ति दिखाई देती है। शमशेर, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भवानी प्रसाद मिश्र आदि की कविताएं इस संदर्भ में देखी जा सकती हैं। नई कविता के समानांतर जिस नई कहानी का विकास हुआ वह मध्यवर्ग केन्द्रित रचनाशीलता का विकास था।

नई कविता और नई कहानी के रचनाकारों के सोच-विचार के मूल में वैयक्तिकता थी, उस वैयक्तिकता को साबित करने के लिए कविता में अनुभूति की ईमानदारी और प्रामाणिकता पर बहस हुई तो नई कहानी में भोगे हुए यथार्थ की बात होने लगी। 'भोगे हुए यथार्थ' की व्याप्ति कहीं-कहीं भोग के यथार्थ के रूप में भी दिखाई देती है। इसका अतिवादी रूप अकविता और अकहानी में सामने आया।

इस दौर में हिन्दी उपन्यास का आकर्षक विकास हुआ जिसके माध्यम से समाज के इतिहास और यथार्थ दोनों की अभिव्यक्ति हुई। यही वह समय है जब एक ओर यशपाल, राही मासूम रज़ा, भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती आदि देश के विभाजन की त्रासदी की अभिव्यक्ति के लिए महाकाव्यात्मक आयाम के उपन्यास लिख रहे

बाबा नागार्जुन

अमृतलाल नागर

गजानन माधव मुक्तिबोध

फणीश्वर नाथ रेणु

Scanned with CamScanner

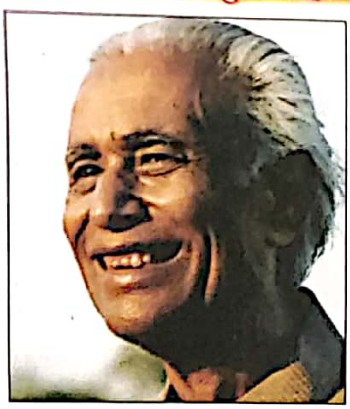

धर्मवीर भारती

कृष्णा सोबती

मोहन राकेश

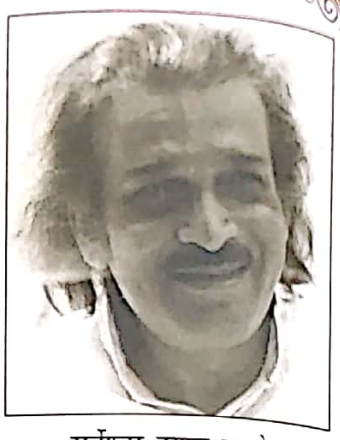

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

थे तो दूसरी ओर फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, भैरव प्रसाद गुप्त, शिवप्रसाद सिंह आदि भारतीय किसान और ग्रामीण जीवन की संघर्ष कथा के रूप में उपन्यास की रचना कर रहे थे। इसी बीच नई कहानी के कथाकार उपन्यास संबंधी नए प्रयोग कर रहे थे। इसी युग में राहुल सांकृत्यायन और रांगेय राघव कथा के माध्यम से भारतीय इतिहास की नई व्याख्या कर रहे थे। हजारी प्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक उपन्यास भी इस बीच प्रकाशित हुए।

50 से 60 के बीच के वर्षों में हिन्दी आलोचना में एक ओर यथार्थवादी और व्यक्तिवादी दृष्टिकोणों के बीच टकराव और बहस की प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं तो दूसरी ओर परंपरा के मूल्यांकन के रूप में आलोचनात्मक लेखन हो रहा था। ऐसे आलोचकों में नंद दुलारे वाजपेयी, नगेन्द्र आदि थे। रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, नामवर सिंह, मुक्तिबोध, विजयदेव नारायण साही, देवीशंकर अवस्थी आदि इस दौर के महत्वपूर्ण आलोचक हैं। ये सभी आलोचक बाद के दिनों में भी आलोचना लिखते रहे हैं और उनकी अनेक महत्वपूर्ण आलोचना पुस्तकें बाद में प्रकाशित हुई हैं।

इसी युग में हिन्दी आलोचकों में एक नई प्रवृत्ति विकसित हुई जिसके अंतर्गत कवि, कहानीकार और उपन्यासकार भी अपनी और अपने समानधर्माओं की रचनाओं तथा रचनाशीलता की रक्षा के लिए आलोचना लिखने लगे। ऐसे आलोचकों में स्वयं अज्ञेय अग्रणी थे। उनके साथ कवियों में लक्ष्मीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, विजयदेव नारायण साही, मुक्तिबोध आदि थे तो दूसरी ओर नई कहानी के कहानीकारों में निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, मार्कण्डेय आदि थे।

इसी समय हिन्दी साहित्य में एक प्रवृत्ति यह भी दिखाई देती है कि कुछ पुरानी साहित्यिक विधाएं धीरे-धीरे परिदृश्य से गायब हो रही थीं और कुछ नई विधाएं सामने आ रही थीं। हिन्दी साहित्य के परिदृश्य से ग़ायब होने वाली विधाओं में प्रमुख है गद्य काव्य। ललित निबंध भी आज़ादी के बाद कम ही लिखे गए हैं, विद्यानिवास मिश्र का नाम इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है। आज़ादी के बाद के दौर में हरिशंकर परसाई जैसे लेखकों ने व्यंग्य को एक स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित किया। नई विधाओं में काव्य नाटक प्रमुख है। धर्मवीर भारती, दुष्यंत कुमार, नरेश मेहता ने काव्य नाटकों की रचना की परंतु यह विधा आगे बहुत दिनों तक नहीं चल पाई। रिपोर्ताज के रूप में एक नई विधा सामने आई। फणीश्वरनाथ रेणु और धर्मवीर भारती इसके प्रमुख लेखक थे। मुक्तिबोध की लंबी कविताओं की चर्चा की प्रक्रिया में छायावाद के जयशंकर प्रसाद और निराला की लंबी कविताओं की चर्चा भी हुई और मुक्तिबोध के समानांतर लिखने वाले अज्ञेय की भी। कुंवर नारायण और धर्मवीर भारती ने नए प्रकार के कथाकाव्य लिखे।

कभी-कभी साहित्य के विकास में समाज और राजनीति की घटनाएं निर्णायक मोड़ का काम करती हैं। ऐसा ही एक निर्णायक मोड़ 1967 में भारतीय समाज, राजनीति और साहित्य में आया। इस समय स्वाधीनता के 20 वर्षों के शासन और सत्ता से जनता का मोह भंग हो रहा था जिसकी अभिव्यक्ति भारतीय राजनीति में दो रूपों में हुई। एक तो 1967 के आम चुनाव में पुरानी सत्ता के बदले नई राजनैतिक चेतना प्रकट हुई और कांग्रेस का एकछत्र शासन समाप्त होने के करीब पहुंच गया। दूसरी ओर सत्ताधारी दल और राजनैतिक शोषण से त्रस्त किसानों ने क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए संघर्ष की शुरुआत की जिसने देश के काफी बड़े हिस्से को प्रभावित किया। उस कृषि क्रांति को नक्सलबाड़ी आंदोलन भी कहा जाता है।

सन् 1967 के इस सामाजिक-राजनैतिक वातावरण से प्रभावित रचनाकारों की एक नई पीढ़ी अखिल भारतीय स्तर पर उभरकर सामने आई। हिन्दी कविता में आलोक धन्वा, कुमार विकल, पंकज सिंह, विष्णुचंद्र शर्मा, विजेन्द्र, वेणुगोपाल, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, मंगलेश डबराल, ज्ञानेन्द्रपति, अरुण कमल, राजेश जोशी, चंद्रकांत देवताले, ऋतुराज आदि कवियों के नाम लिए जा सकते हैं तो कहानी-उपन्यास के क्षेत्र में ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह, रमेश उपाध्याय, स्वयं प्रकाश, जगदीशचन्द्र, जगदंबा प्रसाद दीक्षित, श्रीलाल शुक्ल आदि रचनाकारों की नई पीढ़ी जनवादी रचनाशीलता के नए उत्थान को समृद्ध करने लगी। इसके अलावा पुरानी पीढ़ी के नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर, त्रिलोचन, केदारनाथ सिंह, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, अमृतलाल नागर, भीष्म साहनी, राही मासूम रज़ा, शिव प्रसाद सिंह मार्कण्डेय आदि की रचनाओं में भारतीय जनता के सुख-दुख, आशा-निराशा, जन संघर्ष और नई जनचेतना की अभिव्यक्ति हो रही थी। इसके अलावा नई कविता और नई कहानी के दौर के अनेक कवि और कथाकार भी साहित्य रचना कर रहे थे जिनमें कुंवर नारायण, धर्मवीर भारती, श्रीकांत वर्मा, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता जैसे कवि थे तो कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, मोहन राकेश जैसे कथाकार। इसके साथ ही अकविता और अकहानी के कई रचनाकार, बदली हुई राजनैतिक चेतना और सामाजिक बोध से संपन्न होकर नए ढंग की कविता, कहानी और उपन्यास लिखने लगे। उनमें धूमिल, राजकमल

Scanned with CamScanner

राही मासूम रज़ा

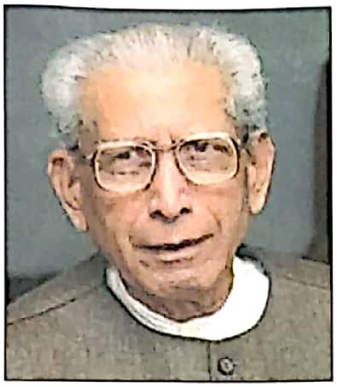

नामवर सिंह

रघुवीर सहाय

मनू भंडारी

चौधरी, लीलाधर जगूड़ी आदि हैं। विनोद कुमार शुक्ल, विष्णु खरे और अशोक वाजपेयी का लेखन भी इसी दौर में सामने आने लगा।

हिन्दी साहित्य में धर्मनिरपेक्ष लेखन की एक नई परंपरा सन् 80 के आस-पास शुरू हुई जिसमें अधिकांशत: भारतीय समाज में हिन्दू सांप्रदायिकता के विरुद्ध मुस्लिम लेखकों का उभार हुआ। ऐसे लेखकों में शानी, असग़र वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह का नाम प्रमुख है। राही मासूम रज़ा तो पहले से ही लिख रहे थे। उर्दू साहित्य की जो धर्मनिरपेक्षता की परंपरा मीर, ग़ालिब, नज़ीर आदि ने शुरू की थी वह हिन्दी कविता और गद्य दोनों में विकसित हो रही थी।

सन् 1980 के आस-पास ही हिन्दी साहित्य में स्त्री-लेखन की प्रवृत्ति बड़े पैमाने पर निर्मित और विकसित हुई जिसने हिन्दी साहित्य की दिशा और धारा दोनों को बदला। ऐसी लेखिकाओं में कुछ पुरानी पीढ़ी की थीं तो कुछ नई पीढ़ी की। एक ओर कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा जैसे लेखिकाएं थीं तो दूसरी ओर नई पीढ़ी की लेखिकाओं में चित्रा मुद्गल, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, राजी सेठ, ममता कालिया आदि।

स्त्री लेखन की यह प्रवृत्ति और परंपरा हिन्दी साहित्य में आगे चलकर और अधिक विकसित और व्यापक हुई। नए स्त्री-लेखन में स्त्रियां अधिक आत्मचेतस और बुद्धिवादी हुईं और महादेवीजी ने जो 'शृंखला की कड़ियां' के माध्यम से स्त्री मुक्ति की चिंता और चर्चा की थी, उसका इस दौर में विकास हुआ और साथ ही विश्वभर में जो स्त्री मुक्ति का आंदोलन चल रहा था, उसके बोध के साथ हिन्दी की लेखिकाओं का लेखन आगे बढ़ा और नए प्रकार के स्त्री-विमर्श की शुरुआत हुई। ऐसा करने वाली लेखिकाएं एक विधा तक सीमित नहीं थीं। वे अनेक विधाओं में लेखन कर रही थीं और कर रही हैं। इनमें मैत्रेयी पुष्पा, कात्यायनी, प्रभा खेतान, गीतांजलिश्री, अनामिका, रमणिका गुप्ता, सविता सिंह, अल्पना मिश्र, मनीषा कुलश्रेष्ठ, वंदना राग आदि उल्लेखनीय हैं। इस नए दौर में आत्मबोध और जगतबोध दोनों की अभिव्यक्ति करने वाली विधा के रूप में स्त्रियों की लिखी अनेक आत्मकथाएं भी सामने आई हैं।

90 के दशक में यानी बीसवीं सदी के अंतिम दशक में रचनाकारों की जो नई पीढ़ी हिन्दी साहित्य में आई उसके सामने अनेक चुनौतियां पहले से मौजूद थीं। दुनिया के विभिन्न भागों में जो समाजवादी व्यवस्थाएं थीं, उनका विघटन हो चुका था या हो रहा था। उस विघटन के साथ ही पूंजीवादी शोषण और दमन से मुक्ति का समाजवादी स्वप्न भी टूटकर बिखर रहा था। इसके समानांतर पूंजीवाद भूमंडलीकरण के नए नारे के साथ भारत में तेज़ी से फैल रहा था। उसके साथ ही उपभोक्तावाद और बाज़ार की संस्कृति का जादुई असर लोगों के दिलो-दिमाग़ पर छा रहा था। भूमंडलीकरण के नारे का सम्मोहन और चित्त विजय का सर्वग्रासी अभियान नई पीढ़ी को जितना चकित कर रहा था उससे अधिक आतंकित। क्योंकि भूमंडलीकरण का लक्ष्य है, पूंजीवाद को दिग्विजयी बनाना, सारी दुनिया का पश्चिमीकरण करना, जिसका वास्तविक अर्थ है अमरीकीकरण। इसका परिणाम होगा पर्यावरण का विनाश और हिंसा की संस्कृति का उत्तरोत्तर प्रसार। आज यह सब हो रहा है। इसलिए हिन्दी की नई पीढ़ी की सार्थक रचनाशीलता भूमंडलीकरण की प्रक्रिया और उसके प्रभावों का प्रतिरोध करती हुई आगे बढ़ रही है। यह पीढ़ी यह जानती है कि वह एक ऐसे समय में जी रही है जो अत्यंत हिंसक है और जिसमें हर चीज़ बिकाऊ है।

नई पीढ़ी के अधिकांश रचनाकार चाहे वे कवि हों या कथाकार, यह महसूस करते हैं कि वे एक संकटग्रस्त समय और समाज में जी रहे हैं, इसलिए उस संकट को समझने, उसके कारणों की खोज करने और उससे मुक्त होने की चिंता उनकी रचनाओं में दिखाई देती है। अभी भारतीय मानस पुराने उपनिवेशवाद के प्रभाव से मुक्त होने की कोशिश कर ही रहा था कि भूमंडलीकरण के रूप में नया उपनिवेशवाद चित्त विजय की नई तरकीबों के साथ आ पहुंचा है। भूमंडलीकरण और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के दो पाटों के बीच में पड़ी नई पीढ़ी की रचनाओं में कहीं आक्रोश है तो कहीं अवसाद, कहीं हताशा है तो कहीं तनाव।

इसके साथ ही जनसंचार, टेक्नोलॉजी और आभासी संसार ने भी साहित्य और साहित्यकार को प्रभावित किया है। इससे प्रकृति, समाज व संस्कृति के प्रति संवेदनशीलता कहीं न कहीं प्रभावित हो रही है।

नई पीढ़ी के कवियों के नामों के बारे में विचार किया जाए तो अनेक नाम सामने आते हैं जो अपनी सार्थक रचनाओं से हिन्दी कविता को समृद्ध कर रहे हैं। मदन कश्यप, पंकज चतुर्वेदी, बोधिसत्व, निलय उपाध्याय, संजय कुंदन, अष्टभुजा शुक्ल, पवन करण, बद्रीनारायण, जितेन्द्र श्रीवास्तव, उपेन्द्र कुमार आदि। इनके साथ ही बीसवीं सदी के महत्वपूर्ण कवियों की कविताएं भी लगातार प्रकाशित हो रही हैं।

कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में नए लेखकों के साथ अनेक वरिष्ठ कथाकार भी सृजनरत हैं। नए कहानीकारों में अखिलेश, उदय प्रकाश, सुभाष कुशवाहा, मनोज रूपड़ा, कैलाश वनवासी, शिवमूर्ति, अनुज आदि के नाम लिए जा सकते हैं और उपन्यासकारों में संजीव और भगवान दास मोरवाल महत्वपूर्ण नाम हैं। कई लेखक ऐसे हैं जो

Scanned with CamScanner

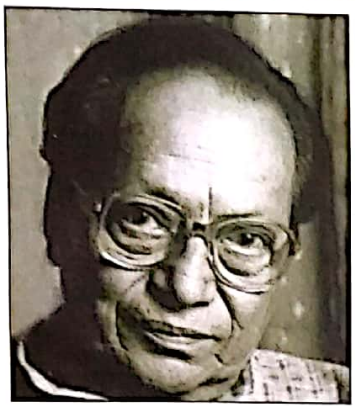

कमलेश्वर प्रसाद सक्सेना

मृदुला गर्ग

ममता कालिया

ओमप्रकाश वाल्मीकि

उपन्यास और कहानी दोनों क्षेत्रों में सक्रिय हैं।

नई पीढ़ी की कविता और कथा-साहित्य की रचनाशीलता की विवेक-यात्रा करने पर यह ज़ाहिर होता है कि कविता और कथा-साहित्य दोनों ही अपनी प्रकृति के अनुसार वर्तमान भारतीय समाज और सभ्यता के संकटों को समझने और नई संभावनाओं की तलाश करने के प्रयास में लगे हुए हैं। कविता जो काम संकेतों के सहारे करती है उसे कथा-साहित्य ब्योरों के साथ। परंतु नई पीढ़ी की रचनाशीलता से गुज़रने के बाद यह देखकर बहुत आश्चर्य होता है कि इस बीच भारत में लगभग तीन लाख किसानों ने आत्महत्या की है, वैसा भारत के इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ। किसानों की इस त्रासदी पर हिन्दी के कुछ ही लेखकों ने ध्यान दिया है। संजीव ने 'फांस' नाम का उपन्यास लिखा है तो राजेश जोशी और विष्णु खरे जैसे वरिष्ठ कवियों ने कविताएं लिखी हैं।

90 के दशक में ही हिन्दी साहित्य में दलित लेखन का उभार हुआ और उसका प्रभाव बढ़ा। दलित लेखकों ने अपने आत्मबोध और अनुभव को अपने लेखन का आधार बनाया। उन्होंने अपने साहित्य को भारतीय समाज में अपनी पराधीन स्थिति से मुक्ति का माध्यम बनाया। दलित साहित्य हिन्दी के ललित साहित्य से एकदम भिन्न है। उसमें दलित समाज के जीवन का यथार्थ, उस यथार्थ के त्रासद अनुभव, यातना और पीड़ा तथा उससे उपजे आक्रोश की अभिव्यक्ति है। दलित लेखकों में पुरुष और स्त्रियां दोनों ही सक्रिय हैं और अपनी नई रचनाशीलता से हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। दलित साहित्य में आत्मकथा, उपन्यास, नाटक, कहानी, कविता, जीवनी और आलोचना का लगातार लेखन हो रहा है। उन्होंने अपने साहित्य की विशिष्टता को व्यक्त करने के लिए नए सौंदर्यशास्त्र का भी निर्माण किया है। दलित लेखक अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य की नई चिंता और चेतना व्यक्त कर रहे हैं जिसे 'दलित विमर्श' नाम दिया गया है। हिन्दी के दलित लेखकों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, डॉ धर्मवीर, श्योराज सिंह 'बेचैन', रजतरानी मीनू, मोहनदास नैमिषराय, सुशीला टाकभौरे, अनीता भारती, अजय नावरिया आदि प्रमुख हैं। दलित साहित्य और दलित विमर्श एक अखिल भारतीय प्रवृत्ति है क्योंकि दलित देशभर में हैं और वे समान यातना, गुलामी और दमन के शिकार हैं। इसलिए उनका अनुभव भी एक तरह का है और उनके साहित्य में भी समानता है।

दलितों की तरह आदिवासी भी भारतीय समाज में सदियों से उपेक्षित और पीड़ित रहे हैं, बल्कि यह कहना चाहिए कि भारतीय समाज में सर्वाधिक उपेक्षा और शोषण का शिकार यदि कोई हुआ है तो वह आदिवासी समाज है। वे ग़ैर-आदिवासियों द्वारा सतत् शोषण, विस्थापन और कुव्यवस्था के शिकार हुए हैं और हो रहे हैं। आज आदिवासी जिस विकराल संकट का सामना कर रहे हैं उसका मूल कारण है राष्ट्र राज्य की अपार ताकत और आतंकवादी हिंसक प्रवृत्ति। जब से पूंजी की सत्ता और राजसत्ता की शक्ति ने मिलजुल कर खनिज पदार्थों को हथियाने के लिए आदिवासी क्षेत्रों के जल, जंगल और ज़मीन पर सम्मिलित रूप से हमला शुरू किया है तब से भारत के विभिन्न क्षेत्रों के आदिवासी समुदायों ने भी अपने अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के लिए सक्रिय प्रतिरोध करना आरंभ किया है। उनके प्रतिरोध की प्रक्रिया उनके साहित्य में भी व्यक्त हो रही है। आदिवासियों की अपनी मातृभाषाएं हैं जिनमें वे बहुत पहले से अपने सुख-दुख, यातना, पीड़ा और प्रतिरोध व्यक्त करते रहे हैं। पहले अधिकांश आदिवासी साहित्य मौखिक ही था पर अब कुछ आदिवासी भाषाओं की लिपियों का विकास होने के कारण उनका साहित्य लिखित रूप में भी सामने आ रहा है। उस साहित्य का अनुवाद हिन्दी, अंग्रेज़ी बांग्ला आदि भाषाओं में हो रहा है। हिन्दी, बांग्ला, ओड़िया, तेलुगु आदि भाषाओं में भी आदिवासी जीवन के संकटों पर साहित्य लिखा जा रहा है। इस समय हिन्दी सहित विभिन्न भारतीय भाषाओं में आदिवासियों के साथ ही ग़ैर आदिवासी लेखक और लेखिकाएं आदिवासी जीवन यथार्थ का साहित्य लिख रहे हैं। इस समय आदिवासी जीवन के इतिहास, संकट, शोषण और दमन के बारे में विचार-विमर्श की प्रक्रिया चल रही है और दलित-विमर्श की तरह आदिवासी-विमर्श विकसित हो रहा है। आदिवासी जीवन और साहित्य की वास्तविकताओं और समस्याओं को हिन्दी पाठकों के सामने लाने में रमणिका गुप्ता की बड़ी भूमिका रही है। निर्मला पुतुल, अनुज लुगुन, रोज केरकैट्टा, हरिराम मीणा, गंगा सहाय मीणा आदि आदिवासी लेखकों के साथ ग़ैर आदिवासी लेखक भी आदिवासियों के जीवन यथार्थ और उनकी समस्याओं के बारे में लिख रहे हैं। इनमें से रणेंद्र, महुआ मांझी महत्वपूर्ण लेखक हैं जिन्होंने आदिवासियों के जीवन यथार्थ पर उपन्यास लिखे हैं।

आजकल हिन्दी समाज में न कोई व्यापक जन आंदोलन है और न कोई प्रभावशाली साहित्यिक आंदोलन। इसलिए रचनाकारों को अपने समय और समाज से अपनी रचनाशीलता का संबंध स्वयं बनाना है और वे बना भी रहे हैं। यही कारण है कि आज की पीढ़ी की रचनाओं में दृष्टि की बहुलता है, जीवन को देखने वाली और रचने वाली दृष्टि की भी। ■

(चन्द्रा सदायत की बातचीत पर आधारित)

Scanned with CamScanner

हिंदी भाषा व देवनागरी लिपि का विकास

आलोक श्रीवास्तव

हिंदी की व्याप्ति, व्यापकता आदि कंप्यूटर, लैपटाप, मोबाइल पर देवनागरी लिपि के सुगम इस्तेमाल की तकनीक विकसित हो जाने के बाद से तेजी से बढ़ी है और बढ़ती जा रही है। देश भर में हिंदी के विविध रूप प्रचलित हैं। इन्हें पूर्वी हिंदी, पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, पहाड़ी, बिहारी के रूप में बांटा जा सकता है। ये रूप अपने क्षेत्र की बोलियों से समन्वित होकर प्रयोग किए जाते हैं। पर लिखित व मुद्रित हिंदी परिनिष्ठित हिंदी कहलाती है। एक समय इस बात पर जोर था कि हिंदी में अधिकांश शब्द संपदा संस्कृत की ही हो। पर भाषा का विकास, समय, इतिहास और जनता के प्रवाह से तय होता है। हिंदी का अब जो बोलचाल का, लेखन और साहित्य का, समाचार पत्र-पत्रिकाओं और दृश्य-श्रव्य माध्यमों का रूप निखर कर आया है, उसका शब्द-भंडार अत्यंत व्यापक है, वह केवल संस्कृत के आग्रह पर नहीं टिका है। उसमें उर्दू की रवानी है तो स्थानीय बोलियों की छटा भी। यही हिंदी की सुंदरता, प्रभावशीलता और संभावना का सूचक भी है।

हिंदी भाषा का विकास पिछले डेढ़ सौ वर्षों में हुआ है। यह उसी देवनागिरी लिपि में लिखी जाती है, जिसमें संस्कृत भाषा। हिंदी भाषा खड़ी बोली हिंदी से विकसित हुई है। खड़ी बोली कौरवी क्षेत्र की बोली है यह मुख्य रूप से पश्चिमी उत्तरप्रदेश व हरियाणा क्षेत्र की बोली है। मध्य युग में उर्दू-फारसी शब्दों और व्याकरण के मूल से इसी खड़ी बोली ने उर्दू का रूप लिया। 19 वीं सदी में नागरी लिपि संस्कृत, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, उर्दू, राजस्थानी आदि बोलियों के व्यापक शब्द भंडार को अपनाते हुए हिंदी भाषा ने अपना परिनिष्ठित विकास किया। इस भाषा की जड़ें पाली, प्राकृत और अपभ्रंश तक जाती हैं।

भाषा वैज्ञानिकों ने भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन उनके शब्द-भंडार, धातुरूप, व्याकरण तथा वाक्य विन्यास के आधार पर करके दुनिया भर में मौजूद लगभग तीन हजार भाषाओं को निम्नलिखित भाषाई समूहों में विभाजित किया है -

1. द्रविड़ परिवार, 2. चीनी एकाक्षरी परिवार, 3. सेमेटिक-हैमेटिक परिवार, 4. यूराल-अल्ताइक परिवार, 5. काकेशियन परिवार, 6. जापानी-कोरियाई परिवार, 7. मलय-पालिनेशियन परिवार, 8. ऑस्ट्रो-एशियाटिक परिवार, 9. बुशमैन परिवार, 10. बांटू परिवार, 11. सूडान परिवार, 12. अमेरिकी परिवार, 13. भारोपीय परिवार।

भाषा-परिवारों का यह विभाजन क्षेत्र, शब्द संपदा, लिपि, ध्वनि आदि के ऐतिहासिक विकास के आधार पर किया गया है। इनमें भारोपीय परिवार सबसे बड़ा और विस्तृत भाषा-परिवार है। हिंदी भाषा इसी भारोपीय परिवार की एक सदस्य है। भारोपीय भाषा परिवार में उत्तरी भारत, अफगानिस्तान, बांग्लादेश, पाकिस्तान, ईरान, ताजिकिस्तान, रूस, मध्य एशिया के अनेक देश, रूमानिया, पोलैंड, इटली, फ्रांस, पुर्तगाल, स्पेन, इंग्लैंड, जर्मनी तथा अमेरिका, अफ्रीका ऑस्ट्रेलिया के अनेक हिस्से आते हैं। जिन देशों का जिक्र किया गया है, यह आवश्यक नहीं है कि उन देशों में पूरी तरह से एक ही परिवार की भाषाएं प्रचलित हों। उदाहरण के लिए भारत में प्रचलित संथाली, मुंडारी भाषाएं आस्ट्रो एशियाटिक परिवार की भाषाएं हैं। भारोपीय नाम का कारण यह है कि ये भाषाएं मुख्यतः भारतीय उपमहाद्वीप तथा यूरोप व उससे लगे एशियाई क्षेत्रों में प्रचलित हैं।

यह माना जाता है कि भारोपीय परिवार की सभी भाषाएं किसी एक स्रोत से हजारों साल पहले जन्मी होंगी। जाहिर है कि स्रोत एक रहा होगा तो क्षेत्र भी एक ही रहा होगा। भाषा-विज्ञानी ब्रांदेश्तीन का मत काफी मान्यता प्राप्त है, इसके अनुसार यूराल पर्वत के दक्षिण-पूर्व में किरगीज के मैदानी भागों में मूल भारोपीय भाषा का जन्म हुआ। यहां के लोग जब प्रशाखाओं में बंट कर अलग अलग क्षेत्रों में बस गए तो वहां की जलवायु, नई जीवन स्थितियों तथा सभ्यतागत विकास से इस भाषा ने अलग-अलग रूप धारण कर लिया और इस प्रकार से कई स्वतंत्र भाषाओं के आदिरूप विकसित हुए। ये स्वतंत्र आदि भाषाएं पुनः इसी तरह प्रवास व विकास जनित कारणों से नई भाषाओं में विकसित हुईं।

लेखक कवि एवं साहित्यकार हैं। दो दशक से भी अधिक 'धर्मयुग' व 'नवभारत टाइम्स, मुंबई' के संपादन से जुड़े रहने के बाद वे 8 वर्ष तक 'अहा! जिंदगी' पत्रिका के प्रधान संपादक रहे। फिलहाल संवाद प्रकाशन की 'विश्व ग्रंथमाला' व 'भारतीय भाषा ग्रंथमाला' के प्रधान संपादक हैं। ईमेलः samvad.in@gmail.com

Scanned with CamScanner

आर्यों की सबसे प्राचीन भाषिक रचना का ग्रंथ ऋग्वेद है। परंतु ऋग्वेद की रचना किसी एक व्यक्ति ने किसी एक काल में नहीं की थी। यह सदियों तक रचा गया और पीढ़ियों द्वारा कंठस्थ कर सुरक्षित रहा। अतः इसमें भाषा का एक रूप नहीं मिलता। यह उत्तर में रचा गया। पर उत्तरी क्षेत्र विशाल है - कंधार से सिंधु तक। इसमें विभिन्न भूगोलों का समावेश है। बाद में इसमें भाषिक व कथ्यगत एकरूपता लाई गई। आचार्य श्याम सुंदर दास के अनुसार ''ज्यों ज्यों आर्यगण अपने आदिम स्थान से फैलने लगे और तत्कालीन अनार्यों से संपर्क बढ़ाने लगे त्यों त्यों भाषा भी विशुद्ध न रह कर मिश्रित होने लगी। विभिन्न स्थानों के आर्य विभिन्न प्रकार के प्रयोग काम में लाते थे। कोई 'क्षुद्रक' (छोटा) कहता था तो कोई 'छुल्लक'। 'तुम दोनों' के लिए कोई 'युवां बोलते थे, कोई 'युवं' और कोई केवल 'वां'.....। आदि आदि अनेक रूप बोले जाते थे। कुछ लोग विभक्ति न लगाकर केवल प्रातिपदिक का ही प्रयोग कर बोलते थे, (यथा 'परमे व्योमन्') तो कुछ शब्द के ही अंग-भंग करने पर सन्नद्ध थे। 'आत्मना' का 'त्यना' इसका अच्छा निदर्शन है। कोई व्यक्ति किसी अक्षर को एक रूप में बोलता तो दूसरा दूसरे रूप में....। इस प्रकार विषमता उत्पन्न हुई और एक स्थल के आर्यों को अन्य स्थल के अधिवासी अपने ही सजातियों की बोली समझने में कठिनता होने लगी। तब उन लोगों ने मिलकर अपनी भाषा में व्यवस्था करने का उद्योग किया। प्रांतीयता का मोह छोड़कर सार्वदेशिक सर्वबोध्य और अधिक प्रचलित शब्द ही टकसाली माने गए। भाषा प्रादेशिक से राष्ट्रीय बन गई।''

इस प्रकार से संस्कृत का उदय हुआ। वैदिक कालीन संस्कृत का रूप अलग है और गुप्त काल में, जब संस्कृत साहित्य के ग्रंथों का बड़े पैमाने पर प्रणयन हुआ, संस्कृत का रूप अलग है। कालिदास, बाणभट्ट, माघ, अश्वघोष, भारवि आदि संस्कृत के महान रचनाकारों से हम परिचित हैं। इनकी संस्कृत भाषा वैदिक संस्कृत से भिन्न है। परंतु गुप्त काल तक आते आते संस्कृत का एक रूप स्थिर हो गया था तथा यह देवनागरी लिपि में लिखी जाती थी। हम यह कल्पना कर सकते हैं कि गुप्त काल में या आज से दो-तीन हजार वर्ष पूर्व भी भारत के उत्तर और दक्षिण में, पूर्व और पश्चिम में अलग-अलग क्षेत्रों में ढेरों भाषाएं बोली जाती रही होंगी, जो समय के साथ विलुप्त हो गईं।

संस्कृत को दो भागों में बांटा गया है। ई.पू. 1500 से 800 ई.पू. तक का युग वैदिक संस्कृत का युग है। सभी वेद, उपनिषद, आरण्यक आदि ग्रंथ इस संस्कृत में लिखे गए हैं। इसका अपना विशिष्ट व्याकरण व शब्द भंडार था। 800 ई.पू. से 500 ई.पू. तक का काल लौकिक संस्कृत का काल है। यही संस्कृत साहित्यिक संस्कृत के रूप में विकसित हुई है। वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में मानकीकरण तथा कुछ ध्वनियों और शब्द रूपों का अंतर है। जिससे उच्चारण और अर्थ भिन्नता पाई जाती है। पाणिनी नाम के एक बड़े व्याकरणाचार्य हुए हैं। हिंदी के

प्रख्यात लेखक वासुदेव शरण अग्रवाल ने इन्हीं पाणिनी के भाषा संबंधी अनुसंधान को आधार बना कर 'पाणिनीकालीन भारत' नामक ग्रंथ की रचना की है, जिसके जरिए भाषा का विकास, भौगोलिक क्षेत्र में उसका विस्तार, उसमें होने वाले परिवर्तनों का इतिहास अत्यंत सुबोध व रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इन्हीं पाणिनी ने लौकिक संस्कृत के व्याकरण का निर्माण किया, उसके शब्दरूपों को स्थिरता प्रदान की। इससे संस्कृत को एक मानक व स्थायी रूप मिला पर यह मानक व स्थायी रूप ग्रंथकारों के अनुशासन में तो आ गया। ग्रंथरचना में मानक संस्कृत का प्रयोग होने लगा। पर भारत का उत्तरी क्षेत्र बहुत विशाल और विविध है। यहां विभिन्न जातियां बसती रही हैं और बाहर से भी ढेरों जातियों का आगमन होता रहा। लिहाजा इस सबका परिणाम यह हुआ कि बोली जाने वाली भाषा संस्कृत से भिन्न रूप लेती गई और प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र में भाषा का स्वतंत्र रूप से विकास होता रहा। इसी से प्राकृत भाषा जन्मी। अर्थात ऐसी भाषा जो प्राकृतिक या नैसर्गिक रूप से प्रयुक्त होती है, न कि ग्रंथ के नियमों से। भाषा-विज्ञानी ग्रियर्सन ने इसी को 'प्राइमरी प्राकृत' भाषा की संज्ञा दी। यानी अब उत्तर भारत में दो तरह की भाषाएं थीं। एक तो संस्कृत दूसरी प्राकृत। प्राकृत को संस्कृत का ही जनभाषाकृत रूप कहा जा सकता है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी अधिकाधिक स्थानीय रूप ग्रहण करता गया और अधिकाधिक प्राकृत होता गया।

वैदिक कालीन संस्कृत का रूप अलग है और गुप्त काल में, जब संस्कृत साहित्य के ग्रंथों का बड़े पैमाने पर प्रणयन हुआ, संस्कृत का रूप अलग है। कालिदास, बाणभट्ट, माघ, अश्वघोष, भारवि आदि संस्कृत के महान रचनाकारों से हम परिचित हैं। इनकी संस्कृत भाषा वैदिक संस्कृत से भिन्न है। परंतु गुप्त काल तक आते आते संस्कृत का एक रूप स्थिर हो गया था तथा यह देवनागरी लिपि में लिखी जाती थी।

प्राकृत भाषा को विभिन्न भाषा-विज्ञानियों ने तीन कालों में बांटा है -

1. प्रथम प्राकृत : इसका काल 500 ईसापूर्व से प्रथम ईस्वी तक माना जाता है। इसे पालि भाषा के नाम से भी अभिहित किया जाता है। परंतु पालि शब्द को लेकर

Scanned with CamScanner

1500 ई में जैन प्राकृत में लिखा गया सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र। इसकी रचना मूलत: तीसरी-चौथी शताब्दी ईसापूर्व में की गयी थी।

विवाद है। इसके विभिन्न अर्थ और विभिन्न व्युत्पत्तियां बताई गई हैं। डॉ मैक्सवेलेसर के अनुसार 'पालि' की व्युत्पत्ति पाटलि शब्द से हुई अर्थात पाटलिपुत्र की भाषा। परंतु यह विचार बाद में गलत सिद्ध हुआ। जगदीश काश्यम के अनुसार पालि का तात्पर्य है पर्याय। पर्याय शब्द का परियाय के रूप में प्राचीन बौद्ध साहित्य में बुद्ध के उपदेश के लिए प्रयोग मिलता है। इसी से पालि की उत्पत्ति हुई। पालि का व्यवहार क्षेत्र उत्तर भारत में किन किन इलाकों में था यह भी विवादास्पद विषय है। पर यह सुनिश्चित है कि बुद्ध के उपदेश तथा बौद्ध-साहित्य पालि भाषा में मिलता है। इसके आधार पर यह माना जा सकता है कि यह बिहार व आज के उत्तरप्रदेश के अधिकांश क्षेत्र में बौद्धिक भाषा के रूप में प्रचलित थी।

2. द्वितीय प्राकृत : प्रथम ईसवी से 500 ईसवी तक इसका काल माना जाता है। इसे लोकप्रिय रूप से अपभ्रंश भी कहा जाता है।

यह प्राकृत समय के साथ कई रूप ग्रहण करती रही। सभ्यता के विकास के साथ-साथ जिस प्रकार सभ्यता के भौगोलिक क्षेत्र का विकास होता है उसी प्रकार उसका भाषा क्षेत्र भी फैलता जाता है। प्राकृत का भाषा क्षेत्र भी विकसित होता रहा, जिसके कारण इसके रूप में परिवर्तन होते रहे। प्राकृत के निम्न भेद किए जा सकते हैं -

1. शौरसेनी - यह मथुरा और शूरसेन क्षेत्र के आसपास प्रचलित थी।
2. पैशाची - यह भारत के उत्तर पश्चिम में प्रचलित रही
3. महाराष्ट्री - यह महाराष्ट्र क्षेत्र में विकसित हुई। आधुनिक मराठी इसी का परिनिष्ठित रूप है।
4. अर्धमागधी - यह प्राचीन कोसल गणराज्य के निकटवर्ती क्षेत्र में प्रचलित थी।
5. मागधी - मगध और आसपास के इलाके में इसका विकास हुआ।
6. केकय - प्राचीन केकय प्रदेश इस भाषा का विकास क्षेत्र था।
7. टक्क - यह पंजाब का इलाका था, जहां टक्क का विकास हुआ।
8. खस - यह हिमालयी क्षेत्रों में प्रचलित थी।
9. द्रावड - इसका क्षेत्र प्राचीन सिंध क्षेत्र था।

3. तृतीय प्राकृत : इसका काल 1500 ईसवी से 1000 ईसवी तक है। इसमें अपभ्रंश भाषा परिगणित की जाती है।

अपभ्रंश का शाब्दिक अर्थ है, बिगड़ा हुआ रूप। यह नाम इसे संभवत: इसलिए मिला होगा कि यह मूल प्राकृत भाषा में समय के साथ ध्वनि व व्याकरण के परिवर्तन से बिगड़ कर एक नए रूप में ढल गई होगी। इसे प्राकृत तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच की संयोजक कड़ी माना जाता है। अपभ्रंश के अनेक रूप प्रचलित रहे हैं, और सभी आधुनिक भाषाओं का विकास अपभ्रंश के इन्हीं रूपों से हुआ है। यही कारण है कि बांग्ला, ओड़िया, गुजराती, हिंदी, असमी, पंजाबी, मराठी आदि सभी भाषाओं की मूल शब्द संपदा समान है।

भाषा विज्ञानी भोलानाथ तिवारी के अनुसार आधुनिक भारतीय भाषाओं का अपभ्रंश से विकास निम्नानुसार हुआ है -

अपभ्रंश	आधुनिक भाषाएं तथा उपभाषाएं
शौरसेनी	पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, पहाड़ी, गुजराती
केकय	लहंदा
टक्क	पंजाबी
ब्राचड	सिंधी
महाराष्ट्री	मराठी
मागधी	बिहारी, बंगालीह, ओडिया, असमिया
अर्धमागधी	पूर्वी हिंदी

भोलानाथ तिवारी के अनुसार - ''इस प्रकार हिंदी भाषा का उद्भव अपभ्रंश के शौरसेनी, मागधी तथा अर्द्धमागधी रूपों से हुआ है।''

भाषाओं के विकास का अध्ययन शिलालेखों, ताम्रपत्रों, ऐतिहासिक दस्तावेजों तथा साहित्य के जरिए किया जाता है। इसमें भी मुख्य स्रोत साहित्य है। सन 1000 के बाद भारत की विभिन्न आधुनिक भाषाओं के आदिरूपों में साहित्य मिलना आरंभ हो जाता है। धीरे धीरे दो-तीन सदियों बाद इस साहित्य की संख्या तथा इसमें भाषा का बढ़ा हुआ विकसित रूप भी परिलक्षित होता है। सिंधी, पंजाबी, हिंदी, गुजराती, मराठी, बांग्ला, असमी, ओडिया आदि का आदि-साहित्य इसी काल के आसपास से मिलना प्राप्त होता है। मध्यकाल आते-आते इन सभी भाषाओं का प्रचुर साहित्य उपलब्ध होता है, जिससे पता चलता है कि मध्यकाल तक भारत की आधुनिक भाषाओं का प्रांतीय भूगोल

Scanned with CamScanner

सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र का एक अन्य पृष्ठ

व साहित्यिक रूप स्थिर व विकसित हो चुका था। इन्हें आधुनिक भारतीय आर्यभाषा कहा गया। अमीर खुसरो हिंदी के पहले कवि माने जाते हैं। उनके काव्य में भाषा का जो रूप प्राप्त होता है, उसी का विकास बाद में हिंदी भाषा के रूप में हुआ।

परंतु हिंदी शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर अस्पष्टता रही है। इसे सामान्य रूप से हिंदू शब्द से लिया गया। सिंधु नदी के पार के उत्तर भारतीय क्षेत्र के लोग हिंदू और उनकी भाषा हिंदी कहलाई। यह एक लोकप्रिय धारणा है। पर इस विषय में अभी भी काफी शोध की आवश्यकता है।

भाषा के अर्थ में हिंदी और उसके विकास के संबंध में अनेक भाषा-विज्ञानियों के मतों का समहार करते हुए भोलानाथ तिवारी ने यह सार-संकलन प्रस्तुत किया है, जो काफी तथ्यात्मक है -

''भारतवर्ष में भी भाषा के अर्थ में 'हिंदी' शब्द के प्रयोग का प्रारंभ मुसलमानों द्वारा ही किया गया। भारतीय परंपरा में 'प्रचलित भाषा' के लिए प्राचीन काल से ही 'भाषा' शब्द का प्रयोग होता आया है। इसका प्रयोग क्रम से संस्कृत, प्राकृत तथा बाद में हिंदी आदि के लिए हुआ। 'सो देख के बनमाली शिष्यार्थ भाषा टीका कीन्ह' (1438 में लिखित भास्वती की भाषा-टीका) 'संस्कृत कबिरा कूप-जल भाषा बहता नीर' - कबीर, 'आदि अंत जस कथ्था अहै, लिखि भाषा चौपाई कहे' - जायसी, 'भाषा भनति मोर मति थोरी' - तुलसी 'भाषा-निबद्ध मति मंजुल' - तुलसी, 'भाषा-बोल न जानहीं जेहि के कुल के दास' - केशवदास संस्कृत आदि के ग्रंथों की हिंदी टीकाओं में 'भाषा-टीका' के रूप में भी यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।''

मध्यकाल के इन कवियों का उदाहरण दो बातें बताता है, एक तो यह कि हिंदी शब्द नहीं, बल्कि 'भाषा' या 'भाखा' का ही प्रयोग आम था। इसके अनेक रूप थे - ब्रज, अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी आदि। कवि स्वांत:सुखाय या राजदरबारों के आश्रय में काव्य, या अन्य ग्रंथ रचना करते थे। अंग्रेजों के आने के बाद कई तरह की नई चीजें उभरीं, जिनमें से एक आधुनिक शिक्षा का आरंभ था। इसके लिए जो आरंभिक संस्थान बने उनमें से एक कोलकाता का फोर्ट विलियम कालेज था। भोलानाथ तिवारी ने हिंदी शब्द के अस्तित्व में आने से पूर्व का यह प्रसंग उद्धृत किया है, ''19 फरवरी 1802 को फोर्ट विलियम कालेज द्वारा 'भाखा मुंशी' की मांग की स्वीकृति, तथा लल्लूलाल को उक्त कालिज के कागजों में 'भाषा मुंशी कहे जाने से पता चलता है कि हिंदी के लिए 'भाषा' शब्द का प्रयोग आधुनिक काल तक चलता रहा है। संस्कृत के टीका-ग्रंथों में तो यह अब भी चल रहा है। पुरानी पीढ़ी के पंडित हिंदी टीका न कह कर 'भाषा टीका' ही कहते हैं।''

इससे यह स्पष्ट होता है कि हिंदी का वर्तमान रूप जिन भाषाओं से विकसित हुआ है, वे तो मध्यकाल में विकसित हो रही थीं। परंतु उन्हें हिंदी का वर्तमान रूप अंग्रेजों की भाषा व शिक्षा संबंधी नीति के लागू होने के बाद मिला। मुस्लिम शासकों के काल में भाषा संबंधी जितने भी उल्लेख मिलते हैं, उनमें हिंदवी या हिंदुस्तानी का उल्लेख उर्दू या रेख्ता या उस भाषा के लिए मिलता है, जो खड़ी बोली का दरबारी रूप या देहलवी रूप थी। इस संबंध में भोलानाथ तिवारी का यह कथन काफी महत्वपूर्ण है -

''यह ध्यातव्य है कि यद्यपि 'हिंदवी' या 'हिंदी' का प्रयोग मध्यदेश की जनभाषा के लिए चल रहा था, और वह उत्तर भारत से दक्षिण भारत में भी जा पहुंचा था, किंतु इसका स्वीकृत भाषाओं में अकबर के काल तक नाम नहीं मिलता। अमीर खुसरो ने अपने ग्रंथ 'नुहसिपर' में उस काल की प्रसिद्ध ग्यारह भाषाओं का उल्लेख किया है - सिंधी, लाहौरी, कश्मीरी, बांग्ला, गौड़ी, गुजराती, तिलंगी, मावरी या कोंकणी, ध्रुव, समुंदरी, अवधी, देहलवी, किंतु इनमें हिंदवी या हिंदी नहीं है। अबुल फजल की 'आइने अकबरी' में दी गई 12 भाषाओं - देहलवी, बांग्ला, मुलतानी, मारवाड़ी, गुजराती, तिलंगा, मरहठी, कर्नाटकी, सिंधी, अफगानी, बलूचिस्तानी, कश्मीरी - में भी इनका नाम नहीं आता। हां, एक बात अवश्य विचार्य है। खुसरो और अबुल फ़ज़ल दोनों ही ने 'देहलवी' का उल्लेख किया है और मध्य प्रदेश की कोई और भाषा नहीं ली है। इसका आशय यह हुआ कि खुसरो से लेकर अबुल फजल के काल तक इस भाषा का स्वीकृत नाम शायद देहलवी ही था। अन्य नाम हिंदवी, हिंदी कदाचित केवल साहित्य तक ही सीमित थे।''

यह ज्ञात इतिहास है कि 18 व 19 वीं सदी के शायर मीर, मोमिन, सौदा, ग़ालिब आदि अपनी भाषा को हिंदी, उर्दू, रेख्ता, हिंदवी आदि समान रूप से कहते थे। अंग्रेजी शिक्षा की स्थापना के बाद हिंदी को नागरी लिपि से और उर्दू को फारसी लिपि से संबद्ध कर दिया

Scanned with CamScanner

गया। सरकारी तौर पर इसे ही मान्यता मिली। इसी के अनुरूप नई खुल रही शिक्षण संस्थाओं में भाषा के शिक्षण की व्यवस्था हुई। 19 वीं सदी का नवजागरण जो कि मूलत: हिंदुओं का ही नवजागरण था, हिंदी को संस्कृत से संबद्ध कर उसका विकास आरंभ किया। स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपना विख्यात ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' संस्कृतनिष्ठ हिंदी व नागरी लिपि में लिखा। नागरी लिपि में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन व साहित्य सृजन 19 वीं सदी के उत्तरार्ध में तेजी से बढ़ा। इस प्रकार हिंदी भाषा और नागरी लिपि का विकास एक नया रूप ले सका। आज़ादी के आंदोलन ने इसे अपनी भाषा बनाया। राष्ट्रीय भावना के विकास के साथ जुड़ कर हिंदी भाषा व नागरी लिपि का तेज विकास 20 वीं सदी के पूर्वार्ध में हुआ। साहित्य के विस्तार ने हिंदी को दूर-दराज तक फैलाया। आरंभ में भारतेंदु के युग तक गद्य की भाषा तो खड़ी बोली हिंदी बन गई परंतु काव्य अब भी ब्रज भाषा में ही लिखा जाता था। परंतु काव्य में नई प्रवृत्तियां आरंभ हुईं और खड़ी बोली संस्कारित होकर काव्य की भाषा भी बन गई। आज़ादी के बाद जनमाध्यमों, शिक्षा-संस्थानों आदि के जरिए हिंदी का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ।

वर्तमान समय में हिंदी 'हिंदी भाषी प्रदेशों' की भाषा है। अर्थात- उत्तरप्रदेश, उत्तराखंड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखंड, हिमाचलप्रदेश, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान। इसके अलावा यह मुंबई, हैदराबाद, गोवा, कोलकाता, बेंगलुरू, सूरत जैसे देश के विभिन्न भाषा-भाषी प्रांतों के सभी बड़े शहरों में व्यापक रूप से बोली समझी जाती है। इस हिंदी प्रदेश में लगभग 18 प्रमुख बोलियां हैं, जिनका अपना समृद्ध साहित्य और उसकी प्राचीन परंपरा भी है। हिंदी का शब्द भंडार संस्कृत के तत्सम, तद्भव, ब्रज, अवधी, मैथिली, उर्दू, फारसी, भोजपुरी, मगही, बुंदेली आदि की व्यापक शब्द-संपदा से समृद्ध है। नए संचार माध्यमों में हिंदी के अनुप्रयोग ने हिंदी को और विस्तार दिया है।

हिंदी की व्याप्ति, व्यापकता आदि कंप्यूटर, लैपटाप, मोबाइल पर देवनागरी लिपि के सुगम इस्तेमाल की तकनीक विकसित हो जाने के बाद से तेजी से बढ़ी है और बढ़ती जा रही है।

देश भर में हिंदी के विविध रूप प्रचलित हैं। इन्हें पूर्वी हिंदी, पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, पहाड़ी, बिहारी के रूप में बांटा जा सकता है। ये रूप अपने क्षेत्र की बोलियों से समन्वित होकर प्रयोग किए जाते हैं। पर लिखित व मुद्रित हिंदी परिनिष्ठित हिंदी कहलाती है। एक समय इस बात पर जोर था कि हिंदी में अधिकांश शब्द संपदा संस्कृत की ही हो। पर भाषा का विकास, समय, इतिहास और जनता के प्रवाह से तय होता है। हिंदी का अब जो बोलचाल का, लेखन और साहित्य का, समाचार पत्र-पत्रिकाओं और दृश्य-श्रव्य माध्यमों का रूप निखर कर आया है, उसका शब्द-भंडार अत्यंत व्यापक है, वह केवल संस्कृत के आग्रह पर नहीं टिका है। उसमें उर्दू की रवानी है तो स्थानीय बोलियों की छटा भी। यही हिंदी की सुंदरता, प्रभावशीलता और संभावना का सूचक भी है।

हिंदी सूचना-संप्रेषण-बाजार की तथा राष्ट्रीय संपर्क की भाषा के रूप में पिछले 70 वर्षों में विकसित हुई है। हिंदी भाषा के विकास से जुड़ी जो नकारात्मक व निराश करने वाली बात है, वह यह कि यह भाषा उच्च शिक्षा का माध्यम नहीं बन सकी। यही नहीं यह अब प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के माध्यम के रूप में भी तेजी से ह्रास को प्राप्त हो रही है। इसका परिणाम विज्ञान, दर्शन, कला, साहित्य, तकनीकी आदि क्षेत्रों में मौलिक चिंतन और मौलिक कार्य के अभाव के रूप में सामने आएगा। ■

प्रकाशन विभाग के विक्रय केंद्र

नई दिल्ली	पुस्तक दीर्घा, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड	110003	011-24367260
दिल्ली	हाल सं. 196, पुराना सचिवालय	110054	011-23890205
नवी मुंबई	701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर	400614	022-27570686
कोलकाता	8, एसप्लानेड ईस्ट	700069	033-22488030
चेन्नई	'ए' विंग, राजाजी भवन, बसंत नगर	600090	044-24917673
तिरुअनंतपुरम	प्रेस रोड, नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट	695001	0471-2330650
हैदराबाद	कमरा सं. 204, दूसरा तल, सीजीओ टावर, कवाड़ीगुड़ा, सिकंदराबाद	500080	040-27535383
बेंगलुरु	फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला	560034	080-25537244
पटना	बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ	800004	0612-2683407
लखनऊ	हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, क्षेत्र-एच, अलीगंज	226024	0522-2325455
अहमदाबाद	4-सी, नेप्चून टॉवर, चौथी मंजिल, नेहरू ब्रिज कॉर्नर, आश्रम रोड	380009	079-26588669

Scanned with CamScanner

संस्कृत भाषा – विचारात्मक अध्ययन

डॉ आशीष कुमार

संस्कृत भाषा और इसके समृद्ध साहित्य का महत्व सहज ही स्पष्ट हो जाता है। प्राचीनता, अविच्छिन्नता, वैज्ञानिकता, व्यापकता, धार्मिक व सांस्कृतिक मूल्य तथा कलात्मक दृष्टि से ही नहीं अपितु धर्म व दर्शन के विचारात्मक अध्ययन की दृष्टि से भी संस्कृत भाषा का अपना महत्व है। संस्कृत का अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं पर प्रभाव परिलक्षित होने पर यह कहा जा सकता है कि संस्कृत एक ऐसी भाषा है, जो सभी भारतीय भाषाओं को एक सूत्र में बांधती है, संस्कृत को सभी भारतीय भाषाओं की जननी स्वीकार करने में कोई बाधा दिखलाई नहीं पड़ती तथा यह तो भारतीयों में परस्पर प्रेम और सौहार्द की वृद्धि करने वाली भाषा है।

संसार की सर्वाधिक प्राचीन और संपन्न भाषा के रूप में संस्कृत को जाना जाता है। यही कारण है कि आज हमें अपने प्राचीन ग्रन्थ संस्कृत भाषा में प्राप्त होते हैं। संस्कृत शब्द का अर्थ ही होता है – 'परिष्कृत' अर्थात् जो अच्छी प्रकार से किया गया हो। संस्कृत न केवल स्वयं में पूर्ण है, अपितु संस्कृत अन्य भारतीय भाषाओं के विकास में भी सहायक सिद्ध हुई है। भारतीय भाषाओं के अध्ययन से यह तथ्य ज्ञात होता है कि किस प्रकार संस्कृत ने अन्य भारतीय भाषाओं को प्राण प्रदान किये हैं, संस्कृत भाषा हमारी भारतीय भाषाओं को बहुत सशक्त करती है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 251 में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि ''हम भारतीय भाषाओं को सशक्त करेंगे और भारतीय भाषाओं के विकास और समृद्धि के लिए संस्कृत प्रमुख भूमिका निभाएगी।'' यह संस्कृत का ही वैशिष्ट्य और सौन्दर्य है कि यदि संस्कृत में 'आकाशः' बोलते हैं, तो हिंदी में 'आकाश', तेलुगु में 'आकाशमु' और कन्नड़ में 'आकाशवु' बोलते हैं। इसी प्रकार संस्कृत में यदि 'भूमिः' बोलते हैं, तो हिंदी, तेलुगु और कन्नड़ में भी 'भूमि' ही बोलते हैं। संस्कृत एक हिन्द आर्य भाषा है जो हिन्द यूरोपीय भाषा परिवार की एक शाखा है। आधुनिक भारतीय भाषाएं जैसे गुजराती, हिन्दी, बांग्ला, मराठी, सिन्धी, पंजाबी, नेपाली आदि सभी भाषाएं संस्कृत से ही उत्पन्न हुई हैं। संस्कृत का इन सभी भारतीय भाषाओं पर प्रभाव सिद्ध करने हेतु संस्कृत का भाषा-वैज्ञानिक दृष्टिकोण से तुलनात्मक अध्ययन करना आवश्यक है। अन्य भारतीय भाषाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन तथा परिणाम स्वरूप प्राप्त समानता से यह स्वतः सिद्ध होता है कि संस्कृत ने इन भाषाओं को कितना प्रभावित तथा उनके विकास में कितनी सहायता प्रदान की है। यहां कुछ अन्य भारतीय भाषाओं के साथ संस्कृत के साम्य को दिखलाने का प्रयास किया जा रहा है। संस्कृत भाषा के शब्द मूल रूप से सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में हैं। अतः हम कह सकते हैं कि सभी भारतीय भाषाओं में एकता की रक्षा संस्कृत के माध्यम से ही हो सकती है। मलयालय, कन्नड़ और तेलुगु आदि दाक्षिणात्य भाषाएं संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित हैं।

अन्य भारतीय भाषाओं पर संस्कृत के प्रभाव को कुछ उदाहरणों से समझने का प्रयास करते हैं। संस्कृत का शब्द 'मातृ' हिन्दी में 'माता' और मलयालम में 'अम्मा' के रूप में प्रचलित है। 'पितृ' शब्द हिन्दी में 'पिता' और मलयालयम में 'अच्चन्' कहा जाता है। संस्कृत शब्द 'पत्तनम्' हिन्दी में 'पत्तन' और मलयालम में 'पट्टणम्' हो जाता है। 'वैधुर्यम्' शब्द हिन्दी में 'विधुर' मलयालय में 'वैडूर्यम्' और कन्नड़ में भी 'वैडूर्यम्' ही कहा जाता है। 'नारिकेलः' को हिन्दी में 'नारियल' और मलयालयम में 'नाळिकेरम्' कहते हैं। इस प्रकार संस्कृत से अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना करने पर अनेक मौलिक समानताओं को देखा जा सकता है।

इस तथ्य को वैश्विक संदर्भ में देखने पर संस्कृत की अनेक पाश्चात्य भाषाओं में अंततः समानताएं ज्ञात होती हैं। अनेकों विदेशी भाषाओं पर भी संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। संस्कृत भाषा से ही विश्व की अनेक भाषाओं की उत्पत्ति हुई है। विश्व की अधिकांश भाषाओं में संस्कृत भाषा के शब्द मिश्रित हैं, जो उनके व्यावहारिक प्रयोग को सरल करने में सहायक हैं। तुलनात्मक भाषा विज्ञान के अध्ययन में विद्वानों ने संस्कृत की ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं से समानता को प्रदर्शित किया है और संस्कृत भाषा को ही तुलनात्मक भाषा विज्ञान का जनक माना है। अंग्रेजी और संस्कृत में भी अनेक समानताएं स्पष्टतः दिखाई देती हैं, जिनके आधार पर संस्कृत से अंग्रेजी के अनेक शब्दों की उत्पत्ति मान सकते हैं। उदाहरणार्थ मां को संस्कृत में 'मातृ' बोलते हैं तो अंग्रेजी में उसी को 'मदर' तथा रशियन में 'मात्' बोलते हैं। बेटी को संस्कृत में 'दुहितृ' बोलते हैं, तो अंग्रेजी में 'डॉटर' तथा रशियन में 'डॉक्' कहते हैं। भाई

लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के राजधानी महाविद्यालय में संस्कृत विभाग में आचार्य हैं। ईमेलः asheeshkumar91@gmail.com

Scanned with CamScanner

को संस्कृत में 'भ्रातृ' कहते हैं, तो अंग्रेज़ी में 'ब्रदर' तथा रशियन में 'ब्रात्' कहते हैं। संस्कृत शब्द 'ज्यामिति' से अंग्रेज़ी शब्द 'जीयोमेट्री', 'त्रिकोणमिति' से 'ट्रिग्नोमेट्री' बने हैं तथा संस्कृत का स्पष्ट प्रभाव साक्षात् परिलक्षित भी होता है। संस्कृत का अन्य विदेशी भाषाओं से तुलनात्मक अध्ययन करने पर संस्कृत का विश्व की लगभग सभी भाषाओं पर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

इस प्रकार संस्कृत भाषा और इसके समृद्ध साहित्य का महत्व सहज ही स्पष्ट हो जाता है। प्राचीनता, अविच्छिन्नता, वैज्ञानिकता, व्यापकता, धार्मिक व सांस्कृतिक मूल्य तथा कलात्मक दृष्टि से ही नहीं अपितु धर्म व दर्शन के विचारात्मक अध्ययन की दृष्टि से भी संस्कृत भाषा का अपना महत्व है। संस्कृत का अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं पर प्रभाव परिलक्षित होने पर यह कहा जा सकता है कि संस्कृत एक ऐसी भाषा है, जो सभी भारतीय भाषाओं को एक सूत्र में बांधती है, संस्कृत को सभी भारतीय भाषाओं की जननी स्वीकार करने में कोई बाधा दिखलाई नहीं पड़ती तथा यह तो भारतीयों में परस्पर प्रेम और सौहार्द की वृद्धि करने वाली भाषा है। यदि संस्कृत के प्रभाव को अन्य विदेशी भाषाओं पर सिद्ध करने के साथ-साथ इस तथ्य का प्रचार और प्रसार भी समुचित प्रकार से किया जाये तो इस बात की पूरी सम्भावना है कि संस्कृत को विश्व पटल पर भी उतना ही सम्मान और प्रेम प्राप्त होगा जितना भारत में प्राप्त हो रहा है।

संस्कृत की उपयोगिता के विषय में हम कह सकते हैं कि वर्तमान समय में संस्कृत एक भाषा के साथ-साथ एक व्यापक विषय भी बन गया है, जो स्वयं एक व्यापक विषय होते हुए समुद्र की भांति अपने भीतर विविध विषयों रूपी नदियों को समाए हुए है। किसी भी विषय की महत्ता को समझाने अथवा बतलाने हेतु उस विषय के समसामयिक तथा आर्थिक पक्ष को समाज के समक्ष रखना आवश्यक है। इसीलिए प्रस्तुत आलेख में संस्कृत की समसामयिकता और आर्थिक महत्ता पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है। जिससे जन सामान्य से लेकर संस्कृत विषय में रुचि रखने वाले अथवा संस्कृत विषय का पठन-पाठन करने वाले सभी अध्येता ज्ञात सूचनाओं के अतिरिक्त अज्ञात तथा नवीन सूचनाओं से परिचित एवं लाभान्वित हो सकें।

वैदिक-गणित

वैदिक संस्कृत से संबंधित ग्रंथों में गणित जैसे क्लिष्ट समझे जाने वाले विषय को अत्यंत सरल उपायों से समझाया गया है। भास्कराचार्य कृत लीलावती जैसे वैदिक गणित से सम्बद्ध ग्रन्थों में पाई का मान, त्रिकोणमिति, ज्यामिति, पाइथागोरस इत्यादि सिद्धांतों के साथ-साथ जटिल तथा दीर्घ गणितीय पद्धति के स्थान पर सरल तथा लघु उपायों को बतलाया गया है। यही कारण है कि अगस्त 2014 में मैथेमेटिक्स का नोबेल पुरस्कार कहा जाने वाला 'फील्ड्स मेडल' पुरस्कार भारतीय मूल के मंजुल भार्गव को प्राप्त हुआ है। जिन्होंने संस्कृत की सहायता से 200 साल पुरानी 'नंबर थिअरी लॉ' को सरल करने की उपलब्धि प्राप्त की है। वर्तमान में मंजुल भार्गव अमेरिका के प्रिंसटन विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक हैं। गणित और संस्कृत में समान रुचि रखने वाले छात्र-छात्राएं भी वैदिक गणित के गूढ़ रहस्यों की खोज कर विश्व प्रसिद्धि को प्राप्त कर प्रख्यात शोधकर्ता बनकर यश और धन दोनों अर्जित कर सकते हैं।

प्राकृतिक-चिकित्सा

संस्कृत में उपलब्ध प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रंथों यथा सुश्रुत-संहिता, चरक-संहिता, अष्टांग-हृदय इत्यादि ग्रंथों की सहायता से वर्तमान समय में प्राकृतिक चिकित्सा पर बल दिया जा रहा है तथा आयुर्वेद में उपलब्ध प्राचीन जड़ी बूटियों और औषधियों की खोज कर उनकी सहायता से रोगों को दूर किया जा रहा है। वर्तमान में भी ऐसे अनेक रोग विद्यमान हैं, जिनके उपचार एलोपैथी चिकित्सा में अभी तक नहीं खोजे जा सके हैं। ऐसे में संस्कृत के विद्यार्थियों के पास यह स्वर्णिम अवसर है, जब वे अपने संस्कृत भाषा के ज्ञान का प्रयोग कर शोध के आधार पर प्राचीन चिकित्सकीय ग्रंथों से असाध्य रोगों के उपचार हेतु सरल और स्वदेशी उपचार प्रदान कर जनकल्याण के साथ-साथ आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति को अपनी आजीविका का साधन बना सकते हैं। आज देश और विदेश में ऐसे अनेक संस्कृत के विद्वान् हैं, जो प्राकृतिक चिकित्सा के माध्यम से न केवल जन सामान्य को रोग मुक्त कर रहे हैं, अपितु आर्थिक लाभ भी प्राप्त कर रहे हैं। इस प्रकार के अन्य संस्कृत विद्वानों की आवश्यकता में लगातार वृद्धि हो रही है।

वास्तु-शास्त्र

वास्तु-शास्त्र घर, भवन अथवा मन्दिर निर्माण करने का प्राचीन भारतीय विज्ञान है। जिसे आधुनिक समय के विज्ञान आर्किटेक्चर का प्राचीन स्वरूप माना जाता है। जिन वस्तुओं का हमारे दैनिक जीवन में उपयोग होता है, उन वस्तुओं को किस प्रकार से रखा जाए, वह भी वास्तु विज्ञान है, वस्तु शब्द से वास्तु का निर्माण हुआ है। हिन्दू मन्दिरों के निर्माण सहित वाहनों, बर्तन, फ़र्नीचर, मूर्तिकला, चित्रों आदि की स्थापना इन सभी में वास्तु-शास्त्र के विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। प्राचीन काल से वर्तमान समय तक गृह निर्माण के अवसर पर घर के भीतर तथा बाहर की सभी दिशाओं एवं अवस्थाओं पर विशेष बल दिया जाता है, जिसमें वास्तु-शास्त्र की अत्यंत उपयोगिता है। घर की भूमि, दिशा, द्वार, खिड़कियां, कक्ष इत्यादि सभी वास्तु-शास्त्र के अनुकूल बनाने का प्रचलन भी हो रहा है। संस्कृत के अध्येता भी वास्तु-शास्त्र का अध्ययन कर इस क्षेत्र में अपना भविष्य निर्माण कर सकते हैं।

सौंदर्य एवं प्रसाधन

संस्कृत में उपलब्ध सौंदर्य एवं प्रसाधन संबंधी शास्त्र यथा भरतमुनि का नाट्यशास्त्र इत्यादि ग्रंथों की सहायता से साज-सज्जा तथा प्राकृतिक आभूषण तथा अलंकारों की ओर जन सामान्य का ध्यान आकृष्ट किया जा रहा है, जिसमें प्राकृतिक औषधियों से निर्मित लेप, उबटन, महावर इत्यादि से शरीर को लंबे समय तक स्वस्थ और सुंदर बनाए रखा जा सकता है। आज बड़ी-बड़ी कंपनियां प्राचीन संस्कृत शास्त्रों में वर्णित सौन्दर्य प्रसाधन के प्राकृतिक उपायों को खोजना चाहती हैं, जिसके लिये उन्हें संस्कृत के विद्वानों की आवश्यकता है, ऐसे में संस्कृत का अध्ययन करने वाले छात्र एवं छात्राएं भी इस प्रकार के ग्रंथों के अध्ययन से सौंदर्य विशेषज्ञ बन सकते हैं और इस क्षेत्र में अपना रोज़गार और भविष्य बना सकते हैं।

योग

महर्षि पतंजलि द्वारा निर्मित योगसूत्र संस्कृत साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। योगसूत्र के अंतर्गत शरीर को स्वस्थ तथा हृष्ट पुष्ट रखने के लिए अष्टांग योग के माध्यम से अपने शरीर तथा इंद्रियों को स्वस्थ तथा दीर्घायु प्रदान करने के मार्गों को बतलाया गया है।

Scanned with CamScanner

संस्कृत का ज्ञाता योग के माध्यम से स्वयं स्वस्थ रहता हुआ दूसरों को भी स्वस्थ रखने के उपाय बतला कर योग को अपनी आजीविका का साधन बना सकता है। आज देश और विशेष रूप से विदेशों में ऐसे अनेक चिकित्सालय बन चुके हैं, जहां रोगियों के असाध्य रोगों जिनका एलोपैथी चिकित्सा के माध्यम से इलाज सम्भव नहीं है, उन रोगों का योग और प्राणायाम के माध्यम से उपचार किया जा रहा है, परिणामस्वरूप इन असाध्य रोगों का उपचार भी सम्भव हो पा रहा है और योग के क्षेत्र में अन्य संस्कृत विद्वानों की भी मांग दिन प्रतिदिन बढ़ रही है।

भाषा-विज्ञान

सर्वाधिक प्राचीन भाषा संस्कृत होने के कारण विश्व की अन्य सभी भाषाएं संस्कृत से संबंधी अथवा समानता रखती हैं। विश्व की अनेक भाषाओं में भाषा वैज्ञानिकों ने संस्कृत का प्रभाव तथा संबंधी पाया है। उदाहरण स्वरूप अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, रशियन, चाइनीज़ इत्यादि सभी भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव है। इस क्षेत्र में अनेक भाषावैज्ञानिक शोधकार्य कर चुके हैं और अभी भी कार्यरत हैं। परन्तु आज आवश्यकता है, ऐसे संस्कृत के विद्वानों की जो संस्कृत के साथ साथ कम्प्यूटर और कोडिंग का भी ज्ञान रखते हों। क्योंकि आने वाला समय भाषा-विशेषज्ञों का ही होने वाला है, इसलिए संस्कृत के विद्वानों को चाहिये कि वे भी कोडिंग सीखकर अपनी स्वयं की संस्कृत ऐप बनाये और जिस भाषा से चाहे उससे संस्कृत को जोड़कर जनसामान्य तक इसका प्रसार कर उन्हें नवोन्मेष ज्ञान से और स्वयं को अर्थ से लाभान्वित करें। संस्कृत के साथ अन्य भाषाओं की तुलना तथा अध्ययन कर संस्कृत के शोध छात्र अंतर्राष्ट्रीय स्तर के भाषा वैज्ञानिक बन सकते हैं, और शोध के क्षेत्र में यश प्राप्त कर सकते हैं।

संगणकीय भाषा विज्ञान

संगणक अर्थात् कंप्यूटर के उपयोग तथा प्रोग्रामिंग में संस्कृत भाषा का अत्यंत महत्व है। संस्कृत भाषा कंप्यूटर के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है, इसी कारण संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली तथा आईआईटी, हैदराबाद ने कंप्यूटर की प्रोग्रामिंग को समझने के लिए संस्कृत के विद्वानों की सहायता से एक नए विषय पर कार्य प्रारंभ किया है, जहां कंप्यूटर के साथ-साथ संस्कृत जानने वाले छात्रों की आवश्यकता है। संस्कृत जगत् में यह एक नया विषय और विकल्प बनकर सामने आ रहा है, जिसमें उज्ज्वल भविष्य निर्माण की असीम सम्भावना है। जो संस्कृतज्ञ जितना शीघ्र इस विषय से जुड़ जायेगा, वह उतना ही शीघ्र इस क्षेत्र में सफलता को प्राप्त कर लेगा।

इलेक्ट्रॉनिक-मीडिया

इलेक्ट्रॉनिक-मीडिया के क्षेत्र में डी डी न्यूज़ चैनल पर प्रतिदिन संस्कृत समाचार प्रवाचक, सम्पादक, रिपोर्टर, कथा लेखक, कविता लेखक, हास्य कवि, संस्कृत श्लोक गायक इत्यादि के लिए संस्कृत के ज्ञाता तथा विद्वानों का चयन किया जा रहा है, इसके अतिरिक्त रेडियो पर भी समाचार वाचन के साथ-साथ संस्कृत नाटकों की रिकॉर्डिंग की जा रही है, आधुनिक चलचित्रों में भी संस्कृत का अनेकत्र प्रयोग हमें दिखलाई पड़ता है, जो जनसामान्य के मनोरंजन के लिए प्रस्तुत किए जा रहे हैं, इसी तरह का एक प्रयास एनसीईआरटी द्वारा भी पंचतंत्र की कहानियां मूर्ख-मित्र तथा मूषकोभव इत्यादि संस्कृत कथाओं की रिकॉर्डिंग करवा कर, रेडियो पर उसे प्रसारित किया जा रहा है। मधुर और स्पष्ट संस्कृत भाषी छात्र यहां अपनी आजीविका को सुनिश्चित कर सकते हैं।

प्रिंट-मीडिया

संस्कृत भाषा में प्रकाशित होने वाली विविध पत्र-पत्रिकाओं तथा समाचार पत्रों के लेखन के लिए संस्कृत के विद्वानों की आवश्यकता है। ये समाचार पत्र अथवा पत्रिकाएं दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, षाण्मासिक तथा वार्षिक अंकों में प्रकाशित होती हैं। उदाहरण स्वरूप संभाषण संदेश, आदर्श अर्वाचीन संस्कृतम्, भारतोदय इत्यादि मासिक संस्कृत पत्रिकाएं हैं तथा सजल संदेश (पाक्षिक), सुधर्मा (दैनिक) इत्यादि समाचार पत्र उपलब्ध हैं, इन समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं के लेखन तथा प्रकाशन हेतु भी संस्कृत के ज्ञाताओं की आवश्यकता है। संस्कृत के विद्वान् भी इस प्रकार के नवीन समाचार पत्र तथा पत्रिकाओं को रुचिकर बनाकर इनके प्रकाशन से स्वयं को तथा संस्कृत से सम्बद्ध अन्य संस्कृतज्ञों को रोज़गार के अवसर प्रदान कर सकते हैं।

प्रकाशन

कई संस्कृत प्रकाशकों को अपने पास उपलब्ध प्राचीन पांडुलिपियों जो कि अन्य लिपियों में हैं, उनके देवनागरी आदि विविध लिपियों में लिप्यंतरण हेतु संस्कृत के विद्वानों की आवश्यकता होती है। जिनमें विविध विदेशी विद्वानों की जीवनी अथवा पुस्तकों का संस्कृत में अनुवाद भी किया जाता है, या संस्कृत की पांडुलिपियों का हिन्दी अथवा अंग्रेज़ी में अनुवाद किया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रकाशकों को संस्कृत भाषा के ग्रंथों की प्रूफ रिडिंग के लिए भी संस्कृत विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है, यहां संस्कृत के छात्र-छात्राएं संस्कृत अनुवाद को अपनी आजीविका का साधन बना सकते हैं।

सर्वाधिक प्राचीन भाषा संस्कृत होने के कारण विश्व की अन्य सभी भाषाएं संस्कृत से संबंधी अथवा समानता रखती हैं। विश्व की अनेक भाषाओं में भाषा वैज्ञानिकों ने संस्कृत का प्रभाव तथा संबंधी पाया है। उदाहरण स्वरूप अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, रशियन, चाइनीज़ इत्यादि सभी भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव है। इस क्षेत्र में अनेक भाषावैज्ञानिक शोधकार्य कर चुके हैं और अभी भी कार्यरत हैं। परन्तु आज आवश्यकता है, ऐसे संस्कृत के विद्वानों की जो संस्कृत के साथ साथ कम्प्यूटर और कोडिंग का भी ज्ञान रखते हों।

अभिलेखों तथा पांडुलिपियों का पठन

आज विश्व की दृष्टि भारत तथा विदेशों में खुदाई में प्राप्त हो रहे विभिन्न अभिलेखों, शिलालेखों, पांडुलिपियों इत्यादि पर है, जिनके समुचित अध्ययन के लिए संस्कृत के विद्वानों की आवश्यकता है। आज भारत सहित विश्व के अनेक देशों में लाखों पांडुलिपियां पुस्तकालयों की शोभा बढ़ा रही हैं, परन्तु उन पांडुलिपियों को पढ़कर उनका सम्पादन करने का साहस बहुत कम संस्कृत विद्वान् ही करते हैं। इसका कारण इस क्षेत्र में अनुभव होने वाला काठिन्य है। परन्तु यह कार्य जितना

Scanned with CamScanner

कठिन है उतना ही रुचिकर और कल्याणकारी भी सिद्ध हो सकता है। इतिहास, अभियांत्रिकी, चिकित्सा, रसायन, खनिज, भूगोल जैसे अनेक क्षेत्रों की अनेक पांडुलिपियों पर आज तक भी शोध अथवा दृष्टिपात नहीं किया गया है। क्योंकि संस्कृत भाषा विश्व की प्राचीनतमा भाषा है, इसीलिए उसको समझने और जानने वाले विद्वान् सरलता से इन पांडुलिपियों का अध्ययन कर सकते हैं। जिससे हमें अपने प्राचीन इतिहास संबंधी सटीक सूचनाएं प्राप्त हो सकती हैं। अभिलेख और पांडुलिपि को अपना विकल्प बनाकर संस्कृत के विद्यार्थी यहां भी अधिक मात्रा में धन और यश दोनों अर्जित कर सकते हैं।

कूट भाषा (कोड लैंग्वेज)

संस्कृत भाषा का व्याकरण संसार का सबसे वैज्ञानिक और प्रमाणिक व्याकरण है। महर्षि पाणिनि द्वारा रचित अष्टाध्यायी की सूत्र-शैली कूट-शैली है, जहां प्रत्येक सूत्र स्वयं में एक विशिष्ट अर्थ अथवा व्याख्या को समाहित किये हुए रहता है। सम्यक् संस्कृत व्याकरण जानने वाले छात्र-छात्राएं इस कूट-भाषा निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। गुरुकुलीय अथवा आधुनिक पद्धति से संस्कृत व्याकरण का अध्ययन करने वाले अर्थात् दोनों प्रकार के विद्यार्थी इस दिशा में अपना योगदान दे सकते हैं।

वैश्विक संदर्भ में देखने पर संस्कृत की अनेक पाश्चात्य भाषाओं में अंततः समानताएं ज्ञात होती हैं। अनेकों विदेशी भाषाओं पर भी संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। संस्कृत भाषा से ही विश्व की अनेक भाषाओं की उत्पत्ति हुई है। विश्व की अधिकांश भाषाओं में संस्कृत भाषा के शब्द मिश्रित हैं, जो उनके व्यावहारिक प्रयोग को सरल करने में सहायक हैं। तुलनात्मक भाषा विज्ञान के अध्ययन में विद्वानों ने संस्कृत की ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं से समानता को प्रदर्शित किया है और संस्कृत भाषा को ही तुलनात्मक भाषा विज्ञान का जनक माना है। अंग्रेजी और संस्कृत में भी अनेक समानताएं स्पष्टतः दिखाई देती हैं, जिनके आधार पर संस्कृत से अंग्रेजी के अनेक शब्दों की उत्पत्ति मान सकते हैं।

नैतिक शिक्षा

संस्कृत विषय के अध्ययन के अंतर्गत छात्रों की नैतिक शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता है। कथा अथवा श्लोकों के माध्यम से छात्रों में नैतिकता का संचार किया जाता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः', 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' इत्यादि वाक्यों से छात्रों के भीतर समानता, एकता तथा महिलाओं के सम्मान जैसे नैतिक और आवश्यक गुणों को उजागर किया जाता है।

आदर्श वाक्य

संस्कृत साहित्य में आदर्श वाक्यों का भंडार है, इसी कारण सामान्य जन अपने बच्चों के नामकरण से लेकर अपने व्यापार, दुकान, मकान, फैक्ट्री, कंपनी सभी के नामों को रखने के समय संस्कृत भाषा की ओर उन्मुख होते हैं। आज भी प्रख्यात विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, अस्पताल, कंपनी और संस्थाएं सभी अपने आदर्श वाक्य संस्कृत में खोजती हैं। इस दिशा में संस्कृत को जानने वाले विद्यार्थी इंटरनेट और सोशल मीडिया की सहायता से एक नूतन विकल्प का प्रसार और प्रचार कर इस ज्ञान को संस्कृत से सम्बद्ध व्यक्तियों तक पहुंचा सकते हैं।

प्रबंधन

इसके अतिरिक्त बड़ी-बड़ी बिजनेस कंपनियां भी मैनेजमेंट के लिए संस्कृत के विद्वानों की शरण में आती हैं, क्योंकि विश्व का सर्वाधिक प्रसिद्ध और कल्याणकारी ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता संस्कृत भाषा में ही लिखित है। साथ ही रामायण, महाभारत, उपनिषद्, मीमांसा इत्यादि ग्रन्थ भी सामान्य प्रबंधन से लेकर आत्म-प्रबंधन तक सभी को अपने में समाए हुए हैं। यहां भी संस्कृत के छात्र प्रबन्धन के क्षेत्र को अपना विकल्प बना सकते हैं। मीमांसा दर्शन के शब्दार्थ से जुड़े विज्ञान की महत्ता के कारण ही आज न्यायालयों में भी मीमांसा सिद्धान्तों को आधार बनाकर न्यायाधीशों द्वारा निर्णय दिये जा रहे हैं, इस दिशा में भी संस्कृतज्ञ अपना योगदान दे सकते हैं।

संस्कृत संवर्धन प्रतिष्ठान

इस आधुनिक काल में ओएनजीसी द्वारा प्रायोजित संस्कृत संवर्धन प्रतिष्ठान में आज संस्कृत के धुरंधर विद्वानों की अत्यन्त आवश्यकता है, इस प्रतिष्ठान के द्वारा विद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली सभी पुस्तकों का संस्कृत में अनुवाद किया जा रहा है, नए कोश बनाए जा रहे हैं, गीता व योग को अत्यंत सरल व अनुपम रीति से पढ़ाने हेतु विविध उपक्रम तैयार किए जा रहे हैं, यहां ऐसे संस्कृत के विद्वानों की अत्यन्त आवश्यकता है, जिनका संस्कृत उच्चारण अत्यन्त स्पष्ट है, यहां पुस्तकों व पांडुलिपियों के ध्वन्यंकन हेतु संस्कृतज्ञों की विशेष आवश्यकता है। साथ ही इस प्रतिष्ठान में आधुनिक समस्याओं के निदान हेतु विविध प्रयोग भी किए जा रहे हैं।

पुरातत्त्व विभाग

भारत के ऐतिहासिक स्थलों व मंदिरों की संस्कृत निष्ठ व्याख्या आधुनिक काल की मांग बन चुकी है, संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों, पांडुलिपियों व गूढ़ शोध के आधार पर आज इन ऐतिहासिक स्थलों की प्रामाणिकता को एक अनुपम पद्धति के माध्यम से पुष्ट किया जा सकता है, तथा प्रच्छन्न प्रामाणिक ज्ञान संसार के समक्ष लाया जा सकता है। एतदर्थ पुरातत्व विभाग में संस्कृत विद्वानों की अत्यन्त आवश्यकता है।

संस्कृत भाषा में अध्ययन, अध्यापन, प्रशासनिक सेवाओं जैसे ज्ञात विकल्पों के अतिरिक्त उपर्युक्त सभी विकल्पों में से अपनी क्षमता और रुचि के अनुसार विकल्प का चयन कर छात्र-छात्राएं अपनी योग्यता के अनुकूल धनोपार्जन कर सकते हैं। बीए संस्कृत (विशेष) अथवा बीए प्रोग्राम में संस्कृत विषय का अध्ययन करने के पश्चात् विद्यार्थी एमए संस्कृत कक्षा के अंतर्गत विभिन्न विकल्पों जैसे वेद, दर्शन, साहित्य, व्याकरण, धर्मशास्त्र, अभिलेख-शास्त्र तथा ज्योतिष जैसे विकल्पों को चुन सकते हैं और अपनी रुचि अनुसार अपना मार्ग तथा योग्यता अनुसार धन अर्जित कर सकते हैं। ■

Scanned with CamScanner

हिंदी बाल साहित्य का परिदृश्य

प्रकाश मनु

पिछले कुछ वर्षों में हिंदी बाल साहित्य में एक नई पीढ़ी के आने की आहट सुनाई दे रही है, जिसने बहुत कुछ बदले हुए अंदाज में बच्चों के लिए एक से एक सुंदर कविताएं और कहानियां लिखी हैं। उम्मीद है, नई पीढ़ी की सृजन की भट्ठी में ढलकर बाल साहित्य की उपेक्षित विधाओं में भी एक से एक नई और हृदय को छूने वाली रचनाएं सामने आएंगी। शायद तभी हिंदी बाल साहित्य का परिदृश्य विश्वस्तरीय हो सकेगा, जिस पर आने वाली पीढ़ियां भी नाज़ करेंगी।

आज के बाल साहित्य के सामने कई चुनौतियां हैं और संभावनाओं के ऐसे क्षितिज भी, जिनकी शायद पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इक्कीसवीं सदी खुद में एक बड़े बदलाव के साथ बहुत सारी चुनौतियां लेकर आई है। हमारा जीवन, जीवन-शैली और आसपास का परिवेश बदलेगा तो बच्चे पर इसका असर भला क्यों न होगा?

इनमें सबसे बड़ा बदलाव तो धीरे-धीरे हमारे परिवारों का एकल परिवार में बदलते जाना है, जिसने पारिवारिक संबंधों की आत्मीयता और लगाव को बहुत कुछ धुंधला दिया है। इस कारण बच्चे पहले से कहीं ज्यादा अकेलापन महसूस करने लगे हैं। बहुत-से परिवारों में माता-पिता दोनों नौकरी पर जाते हैं और स्कूल से लौटने पर खाली घर में रहने को विवश बच्चे को एक अजब-सी त्रासदी का सामना करना पड़ता है। इसी तरह रात-दिन पढ़ाई के बोझ से दबा बचपन कैसे मम्मी-पापा की आकांक्षाएं और अधूरे सपने पूरे करने के लिए हर घड़ी दबता और पिसता जाता है, यह भी घर-घर में देखा जा सकता है। बच्चों के खेल तेजी से गायब हो रहे हैं तथा कॅरियर के बोझ से दबा बच्चा आज निपट अकेला और दोस्तविहीनता के घेरे में है।

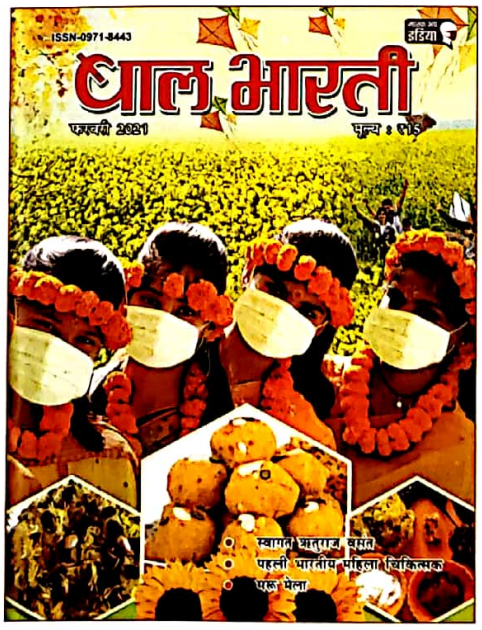

लिहाजा जिस समय में हम जी रहे हैं, उसमें बहुत कुछ पहले से अलग और नया-नया सा है। चाहे विज्ञान और टेक्नोलॉजी में हो रही नई चमत्कारी खोजें हों या फिर जीवन को देखने-समझने का नजरिया और नई-नई जीवन-शैलियां, सब कुछ हैरतअंगेज और अनूठा है। इंटरनेट ने इतनी बड़ी दुनिया को मानो एक ग्लोबल गांव में बदल दिया है, जहां एक-दूसरे के बारे में जानने और मनोरंजन के नए-नए रास्ते सामने आए हैं।

निश्चित रूप से आज के बच्चे उतने अबोध नहीं हैं, जिन्हें कुछ भी कहकर बहकाया जा सके। वे अपने ही नहीं, अपने आसपास की दुनिया के बारे में भी सोचते हैं और यहां तक कि देश-दुनिया की बड़ी-बड़ी समस्याओं की भी उन्हें जानकारी है। इन चीजों की छाप बच्चों के लिए लिखी जा रही आज की बाल कविताओं, कहानियों, उपन्यासों, नाटकों, जीवनियों और यहां तक कि विज्ञान साहित्य में भी देखने को मिलती है। यही वजह है कि इधर बच्चों के लिए लिखी जा रही बहुत चुस्त और सजग रचनाएं अपनी एक अलग छाप छोड़ती हैं और बीते युग के बाल साहित्य से अलग पहचान में आती हैं। उनमें एक ओर बाल मन की मुक्त उड़ानें, खिलंदड़ापन और मस्ती अधिक है, तो कहीं न कहीं उस जिम्मेदारी का एहसास भी, जिसे बच्चे मन ही मन महसूस करते हैं और अपने नन्हें हाथों और नन्हें संकल्पों से कुछ बड़े काम कर डालना चाहते हैं। कहना न होगा कि इक्कीसवीं सदी में हम बाल साहित्य को तेजी से करवट लेते और एक तरह से पुनर्नवा होते देखते हैं। और निश्चय ही इसका जायजा लिया जाए, तो बड़ी बड़ी विस्मयपूर्ण स्थितियां देखने को मिली हैं।

चलिए, सबसे पहले बाल कविताओं की ही बात की जाए। इधर की बाल कविताओं की सबसे बड़ी खासियत यह है कि उनमें बच्चों का मन कुछ अधिक खुला है। इसी तरह नए-नए विषयों को बाल साहित्य की चौहद्दी में लाने की कोशिश बाल कवियों में दिखाई पड़ती है, और वे उन पर इतनी मोहक

लेखक बाल साहित्यकार हैं। उनकी अनेक बाल कविताएं, कहानियां और बाल उपन्यास 'एक था ठुनठुनिया' काफी चर्चित रहे। ईमेल: prakashmanu333@gmail.com

Scanned with CamScanner

कविताएं रच डालते हैं कि यकीन नहीं होता कि बाल कविता यह भी हो सकती है! रमेश तैलंग की लीक से हटकर लिखी गई बाल कविता 'जूते की पुकार' में जूता अपने खास ढंग से शिकायत करता है-

फट गया हूं मैं तले से, कट गया हूं मैं गले से,
लद गया मेरा जमाना, हो गया हूं अब पुराना।
आ पड़ी है जान पर, रुकने लगे सब काम मेरे।
हो कहां, मेरी खबर लो अब तो मोचीराम मेरे!

बच्चों के लिए नए अंदाज की कविता लिखने वाले कवियों में श्याम सुशील का स्वर एकदम अलग है। 'हवा चुलबुली' कविता में वे हवा की मीठी छेड़छाड़ के सुंदर चित्र आंकते हैं-

बांस की टहनियों को हिलाते हुए
नीम की पत्तियों को गिराते हुए,
धूप की बांह में बांह डाले हुए-
ये हवा चुलबुली खिलखिलाके चली!

ऐसे ही प्रदीप शुक्ल अपनी एक कविता में सुबह का यह खुशनुमा चित्र आंकते हैं, जो हर बच्चे के चेहरे पर मुसकान ले आता है-

सुबह-सुबह आंगन में आ गई चिरैया,
सुबह-सुबह नया गीत गा गई चिरैया।

फहीम अहमद की 'खुशबू की सौगात' कविता में हवा के झूले पर झूलती खुशबू का चित्र बड़ा मोहक है, जो हर बच्चे को आकर्षित करता है। शादाब आलम की कविता 'चली गिलहरी गांव' में शहर से ऊबकर गांव की ओर जाती गिलहरी का यह दु:ख और वेदना कितनी सच्ची है-

पैदल, नंगे पांव जी, चली गिलहरी गांव जी।
रहती थी वह बड़े शहर में लेकिन फिर भी बहुत दुखी थी,
भीड़-भड़क्के, शोर-शराबे, से वह काफी ऊब चुकी थी।
चुभती थी कांटों के जैसी उसे वहां की छांव जी।

दिविक रमेश की कविताओं में बच्चे का मन और विभिन्न भावदशाएं देखने को मिलती हैं। साथ ही दिविक के शिल्प में भी बहुत नयापन और ताजगी है। इस लिहाज से उनकी 'चरमर-चरमर' कविता अद्भुत है-

चलो चलें, हम चलकर
देंखें गिरे हुए सूखे पत्तों पर,
मजा आएगा जब गाएंगे
जोर-जोर से पत्ते मिलकर।
चरमर-चरमर, चरमर-चरमर,
चरमर-चरमर, चरमर-चरमर।

ऐसे ही योगेंद्रदत्त शर्मा बाल साहित्य के बहुत मंजे हुए कवि हैं, जिनकी कविताओं की नई सूझ और लयात्मकता बहुत मोहती है। योगेंद्र की पिछले कुछ अरसे में लिखी गई कविताओं में 'आम आए' बहुत सुरीली कविता है, जिसमें आमों के मौसम का आना किसी उत्सव सरीखा लगता है। जरा देखें कि बच्चे के मन में आमों के आने का उल्लास कैसा है-

लौटकर वनवास से जैसे अवध में राम आए!
साल भर के बाद ऐसे ही अचानक आम आए!

इस आलेख के लेखक प्रकाश मनु की चर्चित कविता 'ओहो, चला गया पानी' कविता में पानी के बिना बेहाल होती दुनिया का यह चित्र-

देखो पानी की शैतानी, ओहो! चला गया पानी!!
अभी न पोंछा लगा फर्श पर बर्तन जूठे पड़े हुए हैं,
कैसे पूजा-अर्चन होगा-
दादा जी भी कुढ़े हुए हैं।
मम्मी के बर्तन खड़के हैं-
पानी, पानी, पानी! ओहो! चला गया पानी!!

रोजमर्रा की चीजों की और घर की साफ-सफाई भी जरूरी है। इसी लिहाज से घर में पुताई की भी बड़ी अहमियत है। पर घर में पुताई होने पर चीजें उठाकर यहां-वहां रखने में क्या-क्या गड़बड़झाला होता है, इसे नागेश पांडेय संजय की एक दिलचस्प कविता 'मेरे घर में' बखूबी व्यक्त करती है। हालांकि पुताई के बाद घर कैसे निखर सा जाता है, जरा उसका भी यह बढ़िया चित्र देखें-

सात दिनों तक हुई पुताई,
घर में फिर रौनक थी आई,
फिर से सब सामान सजाया,
हिप-हिप हुर्रे सबने गाया।

यश मालवीय बच्चों के मन में बसे एक बढ़िया और सपनीले स्कूल का चित्र आंकते हैं। ऐसा स्कूल जिसमें कोई रोक-टोक नहीं और खेलकूद की आज़ादी हो। यही बात रावेंद्रकुमार कवि अपने अंदाज में कहते हैं। उनकी कविता में एक बच्चे के मन में एक आदर्श अध्यापिका की छवि कुछ ऐसी है, "अगर कभी बीमार पड़ें हम, हमें देखने आएं! एक गुलाब महकता प्यारा, हमें गिफ्ट कर जाएं!"

खिलौने हमेशा से बच्चों को आकर्षित करते रहे हैं। आज का बच्चा भी खिलौना लेना चाहता है। पर भला कैसा हो वह खिलौना? प्रयाग शुक्ल अपनी एक बाल कविता में उन मजेदार खिलौनों के बारे में बताते हैं, जो आज के बच्चे को चाहिए, "एक खिलौना चलने वाला, एक भागने वाला, एक न जिसमें चाबी कोई और न जिसमें ताला। एक जरा सा उड़ता हो जो, एक जरा सा गाए, एक खिलौना मजेदार हो, हमको खूब हंसाए। चलो खिलौना ढूंढें ऐसा, चाहे पास न पैसा, मन ही मन हम उसे बनाएं अरे, खिलौने जैसा!"

इधर प्रभुदयाल श्रीवास्तव, उषा यादव, नेहा वैद, गिरिजा कुलश्रेष्ठ, रेखा लोढ़ा स्मित, अश्वनीकुमार पाठक, राजा चौरसिया, कौशल पांडेय, रामकरन, निश्चल, समेत नई-रानी पीढ़ी के बहुत से कवि नई सूझ और कल्पनाओं वाली बाल कविताएं लिख रहे हैं, जिनसे बाल कविता के भविष्य को लेकर बहुत उम्मीदें बंधती हैं।

Scanned with CamScanner

साथ ही इधर लिखी जा रही कविताओं से इतना जरूर पता चल जाता है कि अब बाल कविता पहले जैसी नहीं रही, जो कुछ सीमित विषयों के इर्द-गिर्द ही घूमती थी। बल्कि पूरा का पूरा जीवन ही बाल साहित्य की चौहद्दी में आ गया है, और बाल साहित्यकार उसे बखूबी व्यक्त कर रहे हैं। इस लिहाज से बाल कविताओं का परिदृश्य तो व्यापक हुआ ही है, साथ ही साथ-सुथरे शब्दों में बड़ी गहरी व्यंजनाएं भी देखने को मिल जाती हैं। इसे आज की बाल कविता की बड़ी शक्ति और सामर्थ्य ही मानना चाहिए।

कविता की तरह ही बाल कहानी भी बच्चे की सबसे प्रिय चीजों में से एक है, जिसके जरिए वह खुद को और अपने आसपास के परिवेश को समझने की कोशिश करता है। इसलिए रोचक कहानी सुनने की उत्सुकता उसके भीतर से कभी नहीं जाती। यह बात कल की कहानी के लिए भी सच थी और आज की कहानी के लिए भी। फिर भी सच्चाई यह है कि कहानी बदल गई है। आज की बाल कहानी पर आज के समय और हालात का तथा निरंतर बदलती हुई दुनिया की सच्चाइयों का इतना सीधा असर पड़ा है कि उसे नजरअंदाज करना मुमकिन नहीं है।

इस लिहाज से वरिष्ठ कथाकार देवेंद्र कुमार की कहानी 'पूरी बाबा' की मुझे अकसर याद आती है। पूरी बाबा देखते हैं कि कुछ भूखे, अधनंगे बच्चे उन्हीं जूठी प्लेटों को चोट रहे हैं। पूरी बाबा उन अधनंगे, मैले बच्चों को प्यार से पास बुलाते हैं। पूरियों वाली दुकान पर ले जाकर उन्हें बड़े प्यार और इज्जत से पूरी खिलाते हैं। फिर सहज ही कुछ बातें होने लगीं पूरी बाबा और बच्चों में। और उन्होंने मन ही मन कुछ फैसला कर लिया। वे बच्चों को साथ लेकर बैठते और कुछ पढ़ाते-लिखाते। यों पूरियों से चलकर कहानी बच्चों के स्कूल तक चली आई।

वरिष्ठ कहानीकार विनायक जी की 'देवीप्रसाद' और 'छोटा गांधी' भी अविस्मरणीय कहानियां हैं। खासकर 'छोटा गांधी' कहानी तो एक बार पढ़ते ही सीधे दिल में उतर जाती है। इसी तरह दिविक की लू लू की कहानियां भी बड़ी अद्‌भुत हैं, जिनमें एक नटखट बच्चे लू लू का चरित्र मन को खींचता है। अरशद खान की 'पानी-पानी रे' और साजिद खान की 'बरगदी गांव' पर्यावरण से जुड़ी बड़ी भावनात्मक कहानियां हैं। सूर्यनाथ सिंह की 'पिज्जावाला' घर-घर में पिज्जा पहुंचाने वाले एक गरीब आदमी की व्यथा को प्रकट करती है। पंकज चतुर्वेदी की 'बेलगाम घोड़ा' भी बहुत दमदार कहानी है। कहने को यह विज्ञान कथा है, पर किसी विज्ञान कथा को कितना सरस और दिलचस्प कलेवर दिया जा सकता है, यह इस बेहद पठनीय और बिल्कुल नए अंदाज की विज्ञान कथा को पढ़कर जाना जा सकता है।

बाल साहित्य की अन्य विधाओं, खासकर बाल जीवनियों और बाल ज्ञान-विज्ञान साहित्य में निरंतर लिखा जा रहा है, पर इन दिशाओं में अभी और बहुत-कुछ किया जाना बाकी है। बच्चों के लिए संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत, इंटरव्यू, अच्छी पहेलियों और सुंदर तथा कल्पनापूर्ण चित्रकथाओं में जितना काम होना चाहिए था, अभी नहीं हुआ। इसी तरह बालिकाओं को केंद्र में रखकर लिखी गई अच्छी कहानियां और उपन्यास कम हैं। समाज के निर्धन, दलित तबके और झोंपड़पट्टियों के बच्चों को नायक बनाकर लिखी गई ऐसी अच्छी और भावपूर्ण रचनाएं भी हमारे पास अधिक नहीं हैं, जो उनके दर्द, तकलीफों और विपरीत स्थितियों में भी आगे बढ़कर कुछ कर दिखाने के साहस को समाने लाएं।

डॉ सुनीता की 'जलमुर्गाबियां' कहानी उस समृद्ध भारतीय परंपरा को टोहती है, जिसमें पर्यावरण रक्षा कोई अलग चीज नहीं, बल्कि हमारे करुणामय जीवन और परंपरा का स्वाभाविक हिस्सा है। रेनू चौहान की 'नीली पतंग' और मंजुरानी जैन की 'पहली जीत का झंडा' कहानियों की गूंज भी मन में रह जाती है। ओमप्रकाश कश्यप की कहानी 'सुपर कप्तान' भी एक सुंदर और यादगार कहानी है। इसी तरह संजीव ठाकुर की 'कबूतर आंटी' और रावेंद्र रवि की 'तितली उड़कर जा रही है' बड़े कोमल स्पर्श की भावपूर्ण कहानियां है। उषा यादव की 'चुनौती' और कामना सिंह की 'हम होंगे कामयाब' कूड़ा निस्तारण को लेकर लिखी गई पठनीय कहानी है।

इसके अलावा बलराम अग्रवाल, गोविंद शर्मा, विमला भंडारी, देशबंधु शाहजहांपुरी, दर्शनसिंह आशट, मुरलीधर वैष्णव, नागेश पांडेय संजय, सत्यनारायण सत्य, शिवचरण सरोहा और सिराज अहमद की भी अलग-अलग रंग-अंदाज की कहानियों बाल कहानी के मौजूदा परिदृश्य को सशक्त बनाती हैं।

बाल उपन्यासों के वर्तमान परिदृश्य पर एक नजर डालें, तो कम से कम यह चीज आश्वस्त करती है कि पहले की तरह वर्तमान दौर में भी एक साथ कई पीढ़ियों के लेखक बाल उपन्यासों की रचना में सक्रिय रहे हैं। देवेंद्र कुमार, विनायक, उषा यादव, क्षमा शर्मा सरीखे इस दौर के प्रतिनिधि उपन्यासकारों के अलावा पुरानी पीढ़ी के साहित्यकारों में हरिकृष्ण देवसरे, हरिपाल त्यागी, हिमांशु जोशी, पंकज बिष्ट, अमर गोस्वामी, हरीश तिवारी ने भी बच्चों के लिए बाल उपन्यास लिखे। अच्छे बाल उपन्यास लिखने वाले वर्तमान दौर के कुछ और महत्वपूर्ण लेखकों में योगेंद्रदत्त शर्मा, सूर्यनाथ सिंह, डॉ सुनीता, कामना सिंह, रमाशंकर, संजीव जायसवाल संजय, जाकिर अली रजनीश, नागेश पांडेय संजय, कमलेश भट्ट कमल, राकेश चक्र आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

मौजूदा दौर के सर्वाधिक महत्वपूर्ण बाल उपन्यासकार देवेंद्र कुमार का उपन्यास 'चिड़िया और चिमनी' आज की पर्यावरण की समस्या को इतनी संजीदगी से उठाता है कि उससे बाल उपन्यास को एक नई शक्ति ही नहीं, बल्कि एक अलग पहचान भी मिल जाती है। 'चिड़िया और चिमनी' में एक फैक्टरी है, जिसकी चिमनी से रात-दिन काला धुआं निकलता रहता है। उपन्यास के अंत में सारे जानवर जुलूस बनाकर फैक्टरी तक जाते हैं और वह कर गुजरते हैं, जो शायद इनसानों की दुनिया में भी नजर नहीं आता।

कथाकार क्षमा शर्मा के उपन्यास 'भाईसाहब' में पिता के गुजरने पर भाई-बहनों और परिवार का जिम्मा अपने कंधों पर लेने

Scanned with CamScanner

वाले भाईसाहब का चरित्र कुछ आदर्शवादी होकर भी मन को लुभा लेता है। इसी तरह उषा यादव के उपन्यास 'सोना की आंखें' में दो छोटे-छोटे बच्चे साहस और सतर्कता से जिस सच्चाई को सामने रखते हैं, उससे हर कोई अवाक है। हरिपाल त्यागी का 'ननकू का पाजामा', योगेंद्रदत्त शर्मा का 'रेगिस्तान में खरगोश' तथा हरीश तिवारी का 'मैली मुंबई का छोक्रा लोग' भी इस दौर के उल्लेखनीय उपन्यास हैं। वन और वन्य पशुओं की सुंदरता और सम्मोहन से भरे उपन्यासों में विनायक के 'नदिया और जंगल', 'चाची और चुनौतियां' तथा 'चरखी का बेटा' भी बाल पाठकों के मनको बांधने वाले उपन्यास हैं। ऐसे ही मौजूदा दौर में बनी-बनाई लीक को तोड़कर अभिव्यक्ति के नए-नए तेवर खोजनेवाले उपन्यासों में हरिकृष्ण देवसरे के 'डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.घनाजंगल.कॉम' और अमर गोस्वामी द्वारा लिखे गए 'शाबाश मुन्नू' की भी इधर के महत्वपूर्ण बाल उपन्यासों में चर्चा होनी चाहिए।

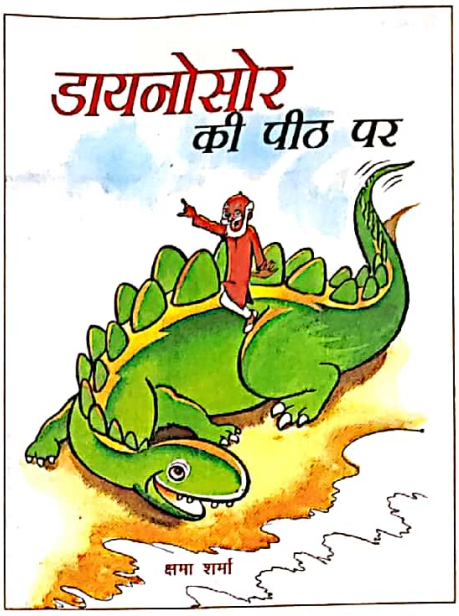

कुछ अरसा पहले लिखे गए डॉ सुनीता के बाल उपन्यास 'एक थी भगती' में बचपन की सरलता और मासूमियत है। उपन्यास में गांव में बिताए गए दिनों की बड़ी रोचक दास्तान है, जिसमें बचपन की अपनी सहेली भगती को उन्होंने बहुत प्यार से याद किया है। इसी तरह नागेश पांडेय संजय का 'टेढ़ा पुल' एक रोचक उपन्यास है, जिसमें बचपन की मासूमियत के साथ ही एक करुण कहानी भी पिरोई हुई है।

नई पीढ़ी के लेखकों में सूर्यनाथ सिंह ने बड़े सुंदर बाल विज्ञान फंतासी उपन्यास लिखे हैं। इनमें 'बर्फ के आदमी' में कल्पना की ताजगी और गुंफन कहीं अधिक हैं। सूर्यनाथ सिंह के विज्ञान फंतासी उपन्यास 'बिजली के खंभों जैसे लोग' में अजब से ग्रह का किस्सा है, जहां पहुंचकर इसके कथानायक बच्चे समझ जाते हैं कि अगर अभी से कोशिशें नहीं की गईं, तो कल धरती और यहां के बाशिंदे भी बच नहीं पाएंगे।

खुशी की बात है कि गुलजार सरीखे बड़े कथाकार ने भी बच्चों के लिए लिखा। उनके उपन्यास 'बोसकी का कौआनामा' में एक कौए का दिलचस्प किस्सा है। युवतर लेखकों में संजीव जायसवाल 'संजय', जाकिर अली 'रजनीश', कमला चमोला, शकुंतला वर्मा और रमाशंकर के बाल उपन्यास भी ध्यान आकर्षित करते हैं। हालांकि बाल साहित्य की इस महत्वपूर्ण विधा में अभी बहुत कुछ और किए जाने की दरकार है।

वर्तमान दौर में बाल नाटकों के क्षेत्र में भी काफी सक्रियता देखने को मिलती है। हिंदी के वरिष्ठ साहित्यकारों में वरिष्ठ साहित्यकारों में श्रीलाल शुक्ल, असगर वजाहत और भारतरत्न भार्गव ने भी पिछले कुछ अरसे में बच्चों के रोचक नाटक लिखे। हालांकि बच्चों के साथ खेलते हुए, खेल-खेल में नाटक रच देने की जैसी बड़ी रचनात्मक प्रतिभा रेखा जैन में है, वैसी शायद ही कहीं और नजर आए। अपनी इसी असाधारण कल्पनाशीलता और खिलंदड़ी अभिव्यक्ति के बल पर वे ऐसे विषयों पर भी जोरदार नाटक रचकर दिखाती हैं जिन पर लिखने से लोग घबराते हैं। बच्चों के सामने गणित को लेकर आनेवाली मुश्किल ऐसी ही एक समस्या है, जिस पर रेखा जैन ने 'गणित देश' नाम से कमाल का नाटक लिखा है, जो हर बच्चे को पढ़ना चाहिए और हर स्कूल में जरूर दिखाया जाना चाहिए।

वरिष्ठ बाल कवि श्रीप्रसाद ने भी बाल नाटक लिखे हैं। उनका पद्यनाटक 'ढोल बजा' बेशक एक अच्छा और यादगार नाटक है, जिसे खेलना बच्चों को एक आनंदकारी अनुभव लगेगा। इसी तरह लंबे अरसे से बच्चों के लिए लिखती आ रही बानो सरताज के नाटक भी ध्यान खींचते हैं। उनके नाटक 'टकलम टोला घी का गोला' और 'चूं-चूं का मुरब्बा' बहुत विनोदपूर्ण हैं। गिरिराजशरण अग्रवाल के 'आधा सेर रबड़ी' और 'मैं धनकलाल हूं, धनकू नहीं' भी मजेदार हास्य नाटक हैं, जिनमें हास्य की सहज भंगिमाएं हैं। प्रताप सहगल के बाल नाटकों के संग्रह 'छूमंतर' में पांच बाल नाटक हैं, जो बाल-मन और सपनों से सटकर चलते हैं और खेल-खेल में कोई गहरी बात कहते हैं।

पिछले कुछ अरसे में लिखे गए उषा यादव का 'तसवीर के रंग' और ओमप्रकाश कश्यप का 'दो राजा अलबेले' भी उल्लेखनीय नाटक है। हालांकि बाल नाटकों के विशाल केनवस पर अभी काफी कुछ छूटा हुआ है। काश, नई पीढ़ी के नए कथाकार इधर आएं, तो बाल साहित्य की इस महत्वपूर्ण विधा में नए पंख लगेंगे और नई उड़ानें संभव होंगी।

इसी तरह बाल साहित्य की अन्य विधाओं, खासकर बाल जीवनियों और बाल ज्ञान-विज्ञान साहित्य में निरंतर लिखा जा रहा है, पर इन दिशाओं में अभी और बहुत-कुछ किया जाना बाकी है। बच्चों के लिए संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत, इंटरव्यू, अच्छी पहेलियों और सुंदर तथा कल्पनापूर्ण चित्रकथाओं में जितना काम होना चाहिए था, अभी नहीं हुआ। इसी तरह बालिकाओं को केंद्र में रखकर लिखी गई अच्छी कहानियां और उपन्यास कम हैं। समाज के निर्धन, दलित तबके और झोंपड़पट्टियों के बच्चों को नायक बनाकर लिखी गई ऐसी अच्छी और भावपूर्ण रचनाएं भी हमारे पास अधिक नहीं हैं, जो उनके दर्द, तकलीफों और विपरीत स्थितियों में भी आगे बढ़कर कुछ कर दिखाने के साहस को समाने लाएं।

पिछले कुछ वर्षों में हिंदी बाल साहित्य में एक नई पीढ़ी के आने की आहट सुनाई दे रही है, जिसने बहुत कुछ बदले हुए अंदाज में बच्चों के लिए एक से एक सुंदर कविताएं और कहानियां लिखी हैं। उम्मीद है, नई पीढ़ी की सृजन की भट्ठी में ढलकर बाल साहित्य की उपेक्षित विधाओं में भी एक से एक नई और हृदय को छूने वाली रचनाएं सामने आएंगी। शायद तभी हिंदी बाल साहित्य का परिदृश्य विश्वस्तरीय हो सकेगा, जिस पर आने वाली पीढ़ियां भी नाज़ करेंगी। ■

Scanned with CamScanner

उर्दू भाषा और साहित्य

हसन ज़िया

उर्दू एक महत्वपूर्ण भारतीय भाषा है, जिसे भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया है। इसकी एक समृद्ध साहित्यिक विरासत है, और इसका विस्तार देशभर में है। उर्दू साहित्य, विशेषकर इसकी शायरी ने विश्व भर के कला प्रेमियों और साहित्य के पाठकों में रुचि पैदा की है। जैसा कि इस भाषा को बोलने वाले विश्व के सभी हिस्सों में हैं, उर्दू यह आशा कर सकता है कि लोगों के साथ इसका विस्तृत और गहन प्रयोग सोशल मीडिया के माध्यम से सीमा से परे विश्व भर में हो।

उर्दू एक भारतीय- आर्य भाषा है, जो कि भारतीय भाषाओं की बिरादरी में सबसे कम उम्र की है। सही ही कहा गया है कि भाषाएं जन्म नहीं लेती हैं, बल्कि समय के साथ उनका विकास होता रहता है। उर्दू भाषा के विकास की प्रक्रिया की शुरुआत कहां से हुई और कैसे हुई इस बात को लेकर बहुभाषाविद् और साहित्यिक इतिहासकारों के विचार एक समान नहीं हैं, इस विषय को लेकर उनके दृष्टिकोण अलग-अलग हैं। लेकिन इस बात को लेकर बड़ी सहमति है कि इसने अपना आकार लगभग 10वीं शताब्दी में दिल्ली और आस-पास के इलाकों में लेना शुरू किया था और यह शौरसेनी अपभ्रंश, खड़ी बोली और पारसी, अरबी और तुर्की शब्दों के साथ ब्रज भाषा के सम्मिश्रण का परिणाम था। 18वीं शताब्दी के आस-पास इसे उर्दू नाम से जाना जाने लगा, लेकिन इससे पहले इसे हिंदी, हिंदवी और रेख़्ता के नाम से जाना जाता था।

जिस तरह से उर्दू का विकास हो रहा था, तत्कालीन शासक वर्ग ने इसे दरबारी भाषा पारसी के मुख़ालिफ लेखन और साहित्य के नज़रिये से नहीं देखकर इसे आम लोगों की भाषा के नज़रिये से ही देखा। हालांकि उर्दू शब्दों ने अपनी पहचान निज़ामुद्दीन औलिया (1238-1325), अमीर खुसरो (1253-1325), बाबा फरीद (1173-1266), नामदेव (1270-1350), कबीर (1398-1448), और गुरु नानक (1469-1539) की कहावतों और काव्यों में बनाना शुरू किया। व्याकरण और स्वर विज्ञान में उर्दू और हिंदी में समानता है। कुछ गौण तबदीलियों के अलावा उर्दू और हिंदी के उच्चारण लगभग समान ही हैं।

खानकाह (फ़कीरों के रहने का स्थान) और सूफी संतों के दरगाह जैसे निज़ामुद्दीन औलिया जो कि दिल्ली में यमुना नदी के तट पर था, यह अंतर-धार्मिक और अंतर-क्षेत्रीय बातचीत का केंद्र बन गया था, और इसने एक मिश्रित भाषा जैसे उर्दू के विकास में भी काफी मदद की। इन स्थानों ने जाति, सम्प्रदाय, विश्वास और धर्म की बंदिशों को हटाकर सभी के लिए अपना दरवाजा खुला रखा था। बाबा फरीद (1173-1266) से लेकर

लेखक 1987 से भारतीय सूचना सेवा से जुड़ने के बाद 34 वर्षों तक सरकारी मीडिया में कार्यरत रहे। पत्र सूचना कार्यालय के लंबे कार्यकाल के अलावा वे सरकारी पत्रिकाओं जैसे योजना, सैनिक समाचार, रोज़गार समाचार और आजकल (उर्दू) के संपादक भी रहे। ईमेल: hasanzia14@gmail.com

Scanned with CamScanner

शेख बु अली शाह कलंदर पानीनती (1209-1324) तक कई संतों के नाम शामिल किये जा सकते हैं। लोग यहां संतों के पास अपनी आध्यात्मिक संतुष्टि के लिए आया करते थे। भाषा के नज़रिये से यह विभिन्न आगंतुकों के मिलने की अनोखी प्रक्रिया थी, जिसने उर्दू के विकास में काफी मदद की। दरबारी भाषा पारसी से हटकर, सूफी संत आम लोगों की भाषा में बातचीत करते थे। 14वीं शताब्दी के बाद उर्दू ने उत्तर से कई जगहों की सैर की, जैसे दौलताबाद, गुलबर्गा और दक्षिण के गोलकोण्डा आदि। दिल्ली सलतनत के प्रतिकूल दक्षिण में नव गठित साम्राज्यों ने उर्दू भाषा को संरक्षण दिया और साहित्य में उर्दू काव्य ने अपनी उपस्थिति दर्ज करना शुरू कर दिया।

गोलकोण्डा के शासक मुहम्मद कुली कुतुब शाह (1565-1612) ने खुद ही तेलुगु, पारसी औद उर्दू में काव्यों की रचना की। कई अन्य भाषाओं के जैसे ही उर्दू में भी काव्य का विकास गद्य (नस्र) से पहले ही हुआ है। हमने वली दक्कनी के काव्य का संकलन पाया है जिसे 1700 में दिल्ली लाया गया था क्योंकि विद्वतापूर्ण अभिव्यक्ति के लिए पारसी का प्रयोग जारी रहा इसलिए नस्र का प्रयोग काफी बाद में सामने आया।

भारतीय उपमहाद्वीप के सांस्कृतिक इतिहास में एक प्रतिष्ठित, असाधारण तथा बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे अमीर खुसरो। वे एक सैनिक, दरबारी, रहस्यवादी, कवि, दार्शनिक, संगीतज्ञ और गायक थे, ये सारे गुण उनमें समाहित थे। अमीर खुसरो ने खूबसूरत शायरी लिखी जिसने भविष्य में उर्दू भाषा के सफ़र के लिए रास्ते का निर्माण किया। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है-

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, भोर भई चहुं देस।।

(गोरी अपने बिस्तर पर सो रही है, उसका चेहरा उसके लंबे बालों से ढंका हुआ है। चलो खुसरो अपने घर की ओर चारों ओर सुबह हो रही है)

19वीं और 20वीं शताब्दी में उर्दू भाषा और साहित्य अपने शीर्ष पर था। यह सर सैयद अहमद खान के आंदोलन के बाद हुआ जिन्होंने 1877 में अलीगढ़ में मोहम्डन एंग्लो ऑरिएंटल कॉलेज की स्थापना की थी। सर सैयद उद्देश्यपूर्ण और सामाजिक रूप से प्रासंगिक साहित्य और पत्रकारिता तथा वैज्ञानिक नज़रिये की वकालत करते थे। उन्होंने साहित्य के उन विचारों को नकार दिया जो प्रेम और खूबसूरती तथा स्वच्छंद सोच पर आधारित होते थे। अलीगढ़ विद्यालय ने अलताफ़ हुसैन अली (1837-1914) जैसे लेखकों और शायरों को शिक्षाप्रद और सुधारवादी कविताओं के लिए प्रेरित किया। इसने नस्र में विद्वतापूर्ण, वस्तुनिष्ठता और भावाभिव्यक्ति की स्पष्टता के मानकों को जोड़ा और अनुभवजन्य दृष्टिकोण पर ज़ोर दिया।

उर्दू शब्दों ने अपनी पहचान निज़ामुद्दीन औलिया (1238-1325), अमीर खुसरो (1253-1325), बाबा फरीद (1173-1266), नामदेव (1270-1350), कबीर (1398-1448), और गुरु नानक (1469-1539) की कहावतों और काव्यों में बनाना शुरू किया। व्याकरण और स्वर विज्ञान में उर्दू और हिंदी में समानता है। कुछ गौण तबदीलियों के अलावा उर्दू और हिंदी के उच्चारण लगभग समान ही हैं।

मुल्क राज आनंद और सज्ज़ाद ज़हीर जो उस समय लंदन में थे, ने 1935 में प्रोग्रेसिव मूवमेंट की शुरुआत की जो उर्दू साहित्य में मील का पत्थर साबित हुई। ऑल इंडिया प्रोग्रेसिव राइटर्स की पहली कॉन्फ्रेंस लखनऊ में 1936 में आयोजित हुई और इसकी अध्यक्षता मुंशी प्रेमचंद ने की थी, इसमें यह तय

मीर तक़ी मीर

बहादुर शाह ज़फर

जिगर मुरादाबादी

मुल्क राज आनंद

Scanned with CamScanner

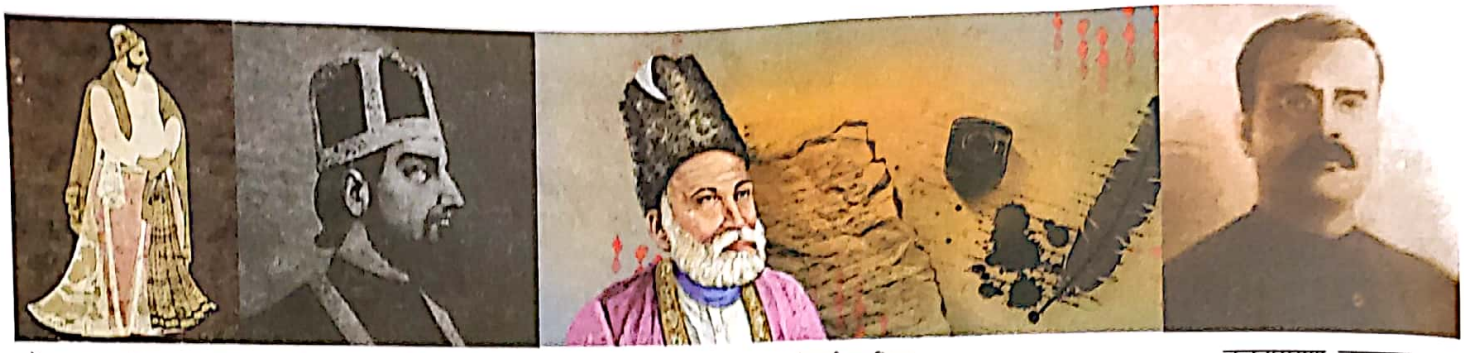

मोहम्मद कुली कुतुब शाह मोहम्मद इब्राहिम ज़ौक़ मिर्ज़ा ग़ालिब बृजनारायण चकबस्त

किया गया कि सौंदर्य प्रोत्साहन के सिद्धांतों को बदलना होगा। साहित्य का अस्तित्व काल्पनिक दुनिया में स्थापित नहीं हो सकता है, विशेषकर ऐसी परिस्थिति में जब हमारे चारों ओर ऐसे लोग हैं जो किसी न किसी प्रकार के कष्ट में हैं। उनके संघर्ष की गाथा भी सामयिक साहित्य में प्रतिबिंबित होनी चाहिये। बाद में सुधारवादियों को सैद्धांतिक चरमपंथ तथा साहित्य को साम्यवाद के प्रचार के लिए हथियार बनाने के लिए दोषी माना गया। उनके प्रचार की कड़ी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप साहित्य आधुनिकतावादी विचारधारा के रूप में प्रकट हुआ। 1960 के दशक में प्रगतिवाद आंदोलन के विरोध में तेजी आई। हालांकि इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि प्रगतिवाद आंदोलन ने हमारा ध्यान जीवन की कठोर हक़ीक़त की ओर खींचा और यथार्थवाद, साहित्य को जीवन के करीब लेकर आया।

1914-17 और 1942-45 के दौरान हुए दोनों विश्व युद्धों के बाद उपनिवेशवाद की जड़ें कमज़ोर होने लगी क्योंकि एशिया और अफ्रीका में स्वतंत्रता आंदोलनों ने गति पकड़ ली थी। आख़िरकार नये राष्ट्र नई महत्वाकांक्षाओं और उम्मीदों के साथ उभर कर आए। 20वीं शताब्दी की शुरुआत में जब भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की गति तेज थी, तब कई लेखकों और कवियों ने देशभक्ति आधारित लेख लिखना शुरू किया और पूरे दिल से स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। बाद के काल में साहित्य में तीखे सैद्धांतिक मतभेद कम होने लगे और कई लेखकों को यह महसूस होने लगा कि वे अपने विचारों को सैद्धांतिक प्रतिबद्धता के साथ नहीं लिख सकते हैं क्योंकि यह उनके लिए बड़ी बाधा थी। उत्तर आधुनिकतावाद काल और फिर वर्तमान काल ने साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए कई नये विषय प्रदान किये हैं।

यहां कुछ महत्वपूर्ण साहित्यिक विधाओं के प्रमुख कार्यों का संक्षिप्त में विवरण दिया जा रहा है।

उर्दू शायरी

उर्दू साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा है शायरी। इसमें सूक्ष्म और प्रभावी अभिव्यक्ति की एक अनूठी क्षमता है कि यह पैग़ाम को इस प्रकार से पहुंचाता है कि हम हमारे मनोभावों को उर्दू नज़्मों में दोहराते हैं। कविताओं के पहले दर्ज संकलन का श्रेय वली दक्कनी (1667-1707) को जाता है। उत्तर में दिल्ली उर्दू शायरों का गढ़ बन गया जैसे खान आरज़ू (1687-1756), हातिम (1699-1791) और मिर्ज़ा मज़हर जान-ए-जनान (1699-1781)। 18वीं शताब्दी में मीर तक़ी मीर (1723-2810) के साहित्य क्षितिज में आने के बाद से उर्दू शायरी ने नई बुलंदियों को छूआ। मीर के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने गहरी उदासी और पतन होते समाज की निराशा के दौर पर कब्ज़ा किया था। ऐसे समय में जब समाज पतन की ओर जा रहा था, एक साहित्यिक इतिहासकार और आलोचक के रूप में मीर आकर्षण, इज़्ज़त और ईमानदारी की तस्वीर थे। उन्होंने एक आदमी के बड़प्पन को इस प्रकार गाया है -

मत सहल हमें जानो फिरता है फ़लक बरसों
तब ख़ाक के पर्दे से इंसान निकलते हैं।।

(हमें आसान सी उपलब्धि के लिए आदमी मत मानना/आदमी के धरती के गर्भ से बाहर आने के पहले आसमान ने सालों तक चक्कर लगाए हैं।)

18वीं शताब्दी के मशहूर शायरों में थे- सौदा (1713-1781), मीर दर्द (1720-1785) कायम चांदपुरी (1722-1793), इंशा (1752-1817), क़लंदर बख़्श जुरअत (1748-1809) और मुसहफ़ी गुलाम हमदानी (1751- 1824)।

उर्दू साहित्य के इतिहास में एक अनोखे कवि थे नज़ीर अकबराबादी (1740-1830), जिन्होंने सामयिक परम्परागत शायरी के विषय जो प्रेम और खूबसूरती पर होती थी, इससे हटकर अपनी दिलचस्पी दुनियादारी के मामलों में रखी। वो एक रहस्यवादी थे। उनकी शायरी में कृष्ण और महादेव, नानक और नरसी भगत का भी ज़िक्र मिलता है। उनकी मशहूर शायरी- "सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा। (जब अंत समय आएगा तब सारी सुख-सुविधाएं यूं ही पड़ी रह जाएंगीं और बंजारा अपना सामान लाद कर चल पड़ेगा।)"

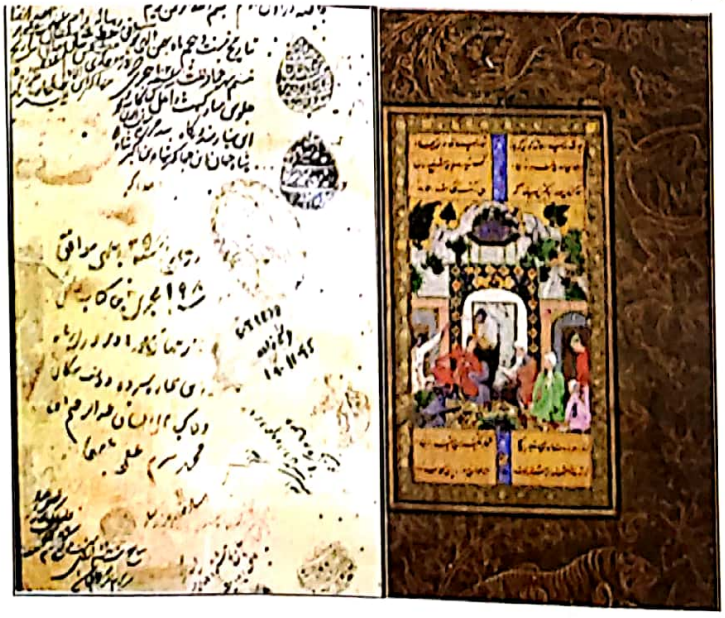

उर्दू साहित्य के लिए 19वीं शताब्दी को स्वर्ण युग

Scanned with CamScanner

माना जाता है। इस समय ज़ौक (1790-1854), बहादुर शाह ज़फ़र (1775-1862), मोमिन (1800-1851) और ग़ालिब (1797-1869) जैसे शायर हुए। ग़ालिब को महान उर्दू शायर माना जाता है, उन्होंने अपनी शायरी की अभिव्यक्तियों में भावुकता के साथ मसखरी और ज्ञान की बातों को भी जोड़ा। वो हमें बताते हैं कि वे अपनी तक़लीफों से कैसे बाहर आए।

रंज से ख़ुगर हुआ इंसां तो मिट जाता है रंज
मुश्किलें मुझपर पड़ीं इतनी कि आसां हो गईं।।

(जब इंसान दु:ख का अभ्यस्त हो जाता है तब उसे दु:खों से तकलीफ नहीं होती मुझपर इतनी मुश्किलें पड़ी कि वे भी अब आसान हो गईं)।

20वीं शताब्दी में उर्दू शायरी की जुबान और लहज़े में काफी बदलाव आ गया। शायर जैसे बृज नारायण चकबस्त (1882-1926), इक़बाल (1876-1938), फ़ानी बदायूनी (1879-1961), जिगर मुरादाबादी (1890-1960), जोश मलीहाबादी (1898-1982), रघुपति सहाय, फ़िराक़ गोरखपुरी (1896-1982), और आनंद नारायण मुल्ला (1901-1997) ने वक्त की नज़ाकत को समझते हुए लिखा। मजाज़ (1911-1955), मजरूह सुल्तानपुरी (1919-2000), मख़दूम मोहिउद्दीन (1908-1969), साहिर लुधियानवी (1921-1980) और अली सरदार जाफरी (1913-2000) की प्रगतिशील शायरी ने फ़रियादी और पददलित मजदूरों के संघर्षमय जीवन में रोशनदान का काम किया। यहां तक कि उनकी रोमानी शायरियों में भी ग़रीबों और लाचारों के लिए सरोकार नज़र आता है।

साहित्य में उर्दू शायरी सबसे लोकप्रिय विधा रही है। मुशायरा (कवि सम्मेलन) में हॉल और प्रेक्षागृह पूरे भरे होते हैं, जहां उर्दू शायरी के प्रेमी अपने चहेते शायर को लीन होकर सुनते हैं। कुंअर मोहिंदर सिंह बेदी (1909-1998), ख़ुमार बाराबंकी (1919-1999), शमीम जयपुरी (मृत्यु-2003) और बशीर बद्र (1935) जैसे शायर इस दौर के प्रसिद्ध शायर हुए।

भारतीय उपमहाद्वीप के सांस्कृतिक इतिहास में एक प्रतिष्ठित, असाधारण तथा बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे अमीर खुसरो। वे एक सैनिक, दरबारी, रहस्यवादी, कवि, दार्शनिक, संगीतज्ञ और गायक थे, ये सारे गुण उनमें समाहित थे। अमीर खुसरो ने खूबसूरत शायरी लिखीं जिसने भविष्य में उर्दू भाषा के सफ़र के लिए रास्ते का निर्माण किया।

उर्दू गद्य/नस्र

उर्दू नस्र का सबसे पहला दस्तावेज हमें 15वीं शताब्दी के आसपास दक्कनी उर्दू में मिला है। इससे पहले के नस्र ज्यादातर सूफी संतों द्वारा उनके शागिर्दों को धर्म का ज्ञान सिखाने के लिए थी। उर्दू साहित्य का पहला महत्वपूर्ण नस्र है 'सबरस' जिसे वजही ने 1635 में लिखा था। दक्षिण में नस्र लेखन चलता रहा था। उत्तर में करबल कथा को नस्र का पहला लेख माना जाता है, जिसे 1731 में लिखा गया था।

1757 में प्लासी का युद्ध जीतने के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपनी प्रशासनिक कार्यवाही को और भी कड़ा कर दिया था। उन्हें अब बंगाल और बिहार से भी लगान वसूली का अधिकार मिल गया था। इस वजह से ब्रिटिश अधिकारियों को आमलोगों से बातचीत करने की जरूरत पड़ने लगी थी, और यह स्थानीय भाषा को जाने बिना संभव ही नहीं था। ब्रिटिश अधिकारियों को भारतीय भाषा हिंदी और उर्दू सिखाने के लिए तत्कालीन वॉयसरॉय - लार्ड वेलेस्ली ने जुलाई 1800 में कोलकाता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। डॉ जॉन गिलक्रिस्ट को कॉलेज ने भारतीय भाषा विभाग का विभागाध्यक्ष बनाया था। अंग्रेज अधिकारियों के लिए पाठ्य पुस्तक और अध्ययन सामग्री तैयार करने के लिए कई लेखकों को नियुक्त किया गया था। इन लेखकों में मीर अम्मन (1748-1806) सैयद हैदरी (1768-1823), निहाल चंद लाहौरी (1813) बेनी नारायण, लल्लू लाल (1763-1835) आदि के नाम हैं। हालांकि धन के अभाव में 1854 में कॉलेज बंद हो गया लेकिन यहां जो पुस्तकें तैयार हुईं उन्होंने उर्दू नस्र के विकास में किसी भी अलंकृत भाषा से स्वयं को आज़ाद रखा। बाद में अलीगढ़ कॉलेज के प्रभाव ने उन नस्रों को सहजता और उद्देश्य प्रदान किया।

उर्दू उपन्यासों ने अपनी जड़ें दास्तान या लंबी परी कथाओं में खोजी। हालांकि नज़ीर अहमद (1836-1912) जैसे उपन्यासकारों ने रोज़मर्रा की जिंदगी को विषय बनाने की पहल की। इस दौरान कई प्रतिष्ठित उपन्यासकार हुए जैसे रतन नाथ धर सरशार (1846-1903) शरर (1860-1926) और मिर्ज़ा हदी रुसवा (1857-1931) जिन्होंने प्रसिद्ध उपन्यास उमराव जान अदा लिखी थी। उर्दू कहानियों में नया मोड़ तब आया जब मुंशी प्रेमचंद (1880-1936) का साहित्य में पदार्पण हुआ। प्रेमचंद का सरोकार समाज के दबे-कुचले और गरीब लोगों की परेशानियों और मुद्दों से था। उनकी सरल भाषा और सुलझी हुई शैली ने काल्पनिक कहानियों या लेखों की रूपरेखा को पूरी तरह बदल दिया। लेखक जैसे सज्जाद ज़हीर (1904-1973), कृष्ण चंदर (1912-1977), इस्मत चुग़ताई (1915-1991) और राजिंदर सिंह बेदी (1915-1984) सामाजिक यथार्थवादी थे, जिन्होंने समाज की मिथ्या और इसके विघटन को उजागर किया। क़ुर्रतुल ऐन हैदर (1927-2007) एक असाधारण और सृजनशील उपन्यासकार थीं, जिन्हें इतिहास और संस्कृति की गहरी समझ

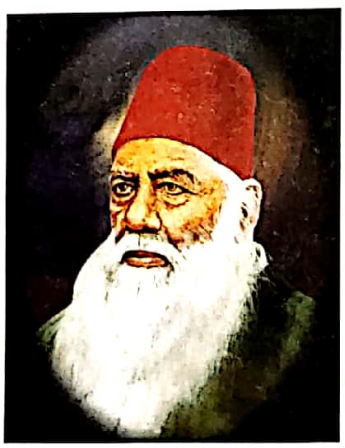
सर सैयद अहमद खान

साहिर लुधियानवी

Scanned with CamScanner

थी। उनकी आत्मकथा आधारित उपन्यास 'कारे जहां दराज़ है' प्रकाशन विभाग की एक अन्य पत्रिका आजकल (उर्दू मासिक) में क्रमानुसार प्रकाशित किया गया था। उन्हें ज्ञानपीठ अवार्ड और पद्म भूषण से भी सम्मानित किया गया था। उनके उपन्यासों में आग का दरिया, गर्दिश-ए रंग-ए चमन और चांदनी बेगम काफी मशहूर हैं।

मशहूर लेखकों और निबंधकारों में मुहम्मद हुसैन आज़ाद (1830-1910), मिर्ज़ा फ़रहतुल्लाह बेग (1883-1947), हास्यकार-व्यंग्यकार रशीद अहमद सिद्दीकी (1894-1977) और कन्हैयालाल कपूर (1910-1980) के नाम शामिल हैं।

उर्दू की काल्पनिक कहानियों में नया मोड़ तब आया जब मुंशी प्रेमचंद (1880-1936) का साहित्य में पदार्पण हुआ। प्रेमचंद का सरोकार समाज के दबे-कुचले और गरीब लोगों की परेशानियों और मुद्दों से था। उनकी सरल भाषा और सुलझी हुई शैली ने काल्पनिक कहानियों या लेखों की रूपरेखा को पूरी तरह बदल दिया।

उर्दू पत्रकारिता

उर्दू का पहला अख़बार जाम-ए-जहांनुमा को 1822 में हरिहर दत्ता द्वारा कोलकाता में शुरू किया गया था। हरिहर दत्ता प्रसिद्ध बंगाली पत्रकार और संवाद कौमुदी (बंगाली साप्ताहिक) के संस्थापक तारा चंद दत्ता के पुत्र थे। जाम-ए-जहांनुमा के पहले संपादक सदा सुखलाल थे। बाद में कई अन्य उर्दू अखबारों ने भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराई जैसे दिल्ली उर्दू अख़बार (1937), अवध अख़बार (1858), आगरा अख़बार (1863), अवध पंच (1877), पैसा अखबार (1886)। दिल्ली उर्दू अखबार के सम्पादक मोहम्मद बाक़र के 1857 के विद्रोह में शामिल होने के कारण उनकी हत्या अंग्रेजी अधिकारी मेजर विलियम हडसन ने 16 सितंबर 1857 में कर दी थी। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अपनी जान गंवाने वाले वे पहले उर्दू पत्रकार थे। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद (1888-1958) के अख़बार हल-हिलाल और अल-बलाग़ और मोहम्मद अली जौहर (1879-1931) के अखबार कॉमरेड और हमदर्द ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ आवाज़ उठाई थी।

आज़ादी के बाद उर्दू अख़बारों ने ख़बरें और विचार देना जारी रखा। उर्दू अखबारों और पत्रिकाओं ने पाठकों के बीच अच्छी लोकप्रियता हासिल कर ली थी। डिजिटलीकरण की चुनौती को स्वीकारते हुए अब ये ई-पेपर में आ रहे हैं। वर्ष 2019-20 के दौरान 6909 उर्दू प्रकाशन का पंजीकरण रजिस्ट्रार ऑफ न्यूजपेपर फॉर इंडिया के तहत हुआ था।

द नेशनल काउंसिल फॉर प्रोमोशन ऑफ उर्दू लैंग्वेज (एनसीपीयूएल)/उर्दू भाषा विकास परिषद

जहां तक सरकार द्वारा भाषा के विकास का सवाल है तो यह बताना अहम है कि इसमें एनसीपीयूएल का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यह एक स्वायत्त निकाय है जो भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के माध्यमिक और उच्च शिक्षा के अंतर्गत आता है। इसकी स्थापना 1 अप्रैल, 1996 को उर्दू भाषा के विकास, प्रचार और प्रसार के लिए की गई थी। उर्दू के विकास के लिए राष्ट्रीय नोडल एजेंसी एनसीपीयूएल, प्रमुख संयोजक के रूप में कार्य करती है साथ ही यह उर्दू भाषा के विकास और शिक्षण के लिए जांच प्राधिकरण भी है।

उर्दू के विकास के लिए एनसीपीयूएल ने कई मार्ग अपनाए हैं जिनमें उर्दू भाषा में पुस्तक प्रकाशन, दूरस्थ शिक्षा, व्यवसायिक प्रशिक्षण, ऑनलाइन पाठ्यक्रम, तकनीकी प्रशिक्षण शामिल हैं। उर्दू भाषा को विज्ञान और तकनीकी विकास से जोड़ने के लिए एनसीपीयूएलकई मान्यता प्राप्त संस्थाओं द्वारा तकनीकी पाठ्यक्रम जैसे कम्प्यूटर एप्लीकेशन, बिजनेस अकाउंटिंग एंड मल्टी लिंगुअल-डीटीपी (काबा-एमडीटीपी) पाठ्यक्रम, कैलीग्राफी एंड ग्राफिक डिजाइन आदि का संचालन किया जाता है। उर्दू भाषा को प्रोत्साहित करने के लिए बाद में कई राज्य सरकारों ने उर्दू अकादमी की स्थापना की है।

निष्कर्ष

उर्दू एक महत्वपूर्ण भारतीय भाषा है जिसे भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में उर्दू बोलने वालों की संख्या 5,07,72,631 थी। इस भाषा का विस्तार पूरे भारत में है, और इसकी समृद्ध साहित्यिक विरासत भी है। उर्दू साहित्य, विशेषकर इसकी शायरी ने विश्व भर के कला प्रेमियों और साहित्य के पाठकों में रुचि पैदा की है।

तकनीकी विकास के चलते आज के ज़माने में भाषा अपने बोलने वाले लोगों तक नये-नये ज़रिये से पहुंच पा रही है। तकनीकी में तेजी से हो रहे विकास ने जीवन को पूरी तरह से बदल दिया है। पश्चिम में हुए एक शोध में यह बात सामने आई है कि युवाओं में लिखित पुस्तकों को पढ़ने का प्रचलन काफी कम हो गया है। तेज़ रफ्तार भरी आज की जिंदगी में इत्मिनान के पल पुराने ज़माने की बात हो गई है। अब लिखने के लिए कागज़ और क़लम की जगह कम्प्यूटर, लैपटॉप और मोबाइल का इस्तेमाल होने लगा है। जिस प्रकार कई लोग अब पढ़ने के लिए डिजिटल डिवाइस का प्रयोग करने लगे हैं, उसी प्रकार भाषा और उनकी लिपियों को भी अपने पाठकों तक पहुंचने के लिए तकनीक को अपनाना होगा। प्रकाशन के क्षेत्र में एक नई रुचि भारतीय भाषाओं के अनुवाद के रूप में पैदा हुई है जिससे साहित्यिक परम्पराओं का आदान-प्रदान संभव हो पा रहा है।

जैसा कि इस भाषा को बोलने वाले विश्व के सभी हिस्सों में हैं, उर्दू यह आशा कर सकती है कि लोगों के साथ इसका विस्तृत और गहन प्रयोग सोशल मीडिया के माध्यम से सीमा से परे विश्व भर में हो। आने वाले समय में आशा की जा सकती है कि साहित्य को पढ़ा जाएगा और उसे प्रोत्साहित भी किया जाएगा। क्योंकि अच्छे साहित्य को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि जो समय और स्थान के बंधन के परे होता है। ■

संदर्भ

1. अ हिस्ट्री ऑफ उर्दू लिट्रेचर, मो. सादिक (1984)
2. अ हिस्ट्री ऑफ उर्दू लिट्रेचर, अली ज़वाद ज़ैदी, नई दिल्ली (1993)
3. मुक़दमा-ए-तारीख-ए-ज़बान-ए-उर्दू, मसूद हुसैन खान, अलीगढ़ (1988)
4. आज़ादी के बाद हिंदुस्तान का उर्दू अदब, मो. ज़ाकीर, दिल्ली (1981)

Scanned with CamScanner

तोल्कप्पियम - प्राचीन व्याकरण

प्रो के वी बालासुब्रमण्यन

तोल्कप्पियम में कई हजार वर्षों के पारंपरिक व्याकरणिक नियमों का पालन किया गया था। इसके पीछे एक लंबी व्याकरणिक परंपरा जीवित थी, जिसने पहले उपलब्ध व्याकरण ग्रंथ का निर्माण करने के लिए भारी सामग्री प्रदान की है। तमिलों का सौभाग्य है कि वे अपने गौरवशाली यशस्वी पूर्वजों की कई बहुमूल्य कृतियों को नष्ट होने से बचाकर तोल्कप्पियम को बिना कोई नुकसान पहुंचाए फिर से प्राप्त कर सकते हैं।

तमिल में व्याकरणिक ग्रंथ तोल्कप्पियम सबसे प्राचीन है, जिसे ज्यादातर लोग ईसा पूर्व पांचवीं या छठी शताब्दी की उपलब्धि मानते हैं।[1] कोई अन्य समकालीन कार्य उपलब्ध नहीं है। दक्षिणी प्रायद्वीप के समुद्रों में हुई भारी तबाही ने बड़ी मात्रा में ताड़ के पत्तों की पांडुलिपियों को मिटा दिया था; जिसमें व्याकरण और साहित्य के कई कार्य शामिल थे। साहित्य की विभिन्न विधाओं और वर्गीकरण के लिए नियम और विनियमों को निर्धारित करने के दौरान तोल्कप्पियम स्वयं ऐसे कई प्राचीन कार्यों को संदर्भित करता है, जिसे हम विस्तार से नहीं जानते हैं।[2]

1. सूक्ष्म परिज्ञानि विद्वानों के प्रतिपादन के अनुसार आंखों का झपकना और उंगलियों का तड़कना उच्चारण में ध्वनि की माप है।[3]
2. जब 'था' का उच्चारण होता है, तब तीन बिंदीदार अक्षर ~ का ठहराव, विद्वता के अनुसार गलती नहीं है।[4]
3. गौरवशाली विद्वानों ने एक कविता के हिस्सों के रूप में तैयार किया और सशक्त रूप से कहा।[5]
4. विद्वान् इन सभी सात - छंद, टीका-टिप्पणी, पुस्तक, कथन, पहेली, व्यंग्य, कहावत को तीन शानदार संरक्षकों की चारदीवारी के अंदर प्रचलित अभियोगात्मक नियम कहते हैं।[6]
5. विद्वानों ने कविता के रूप में इस सूक्ति को बहुपयोगी बताया है।[7]

तोल्कप्पियम के 230 स्थानों में उपर्युक्त प्रकार के संदर्भ हैं। यह सभी संदेहों से परे है कि तोल्कप्पियम ने कई हजार वर्षों के पारंपरिक व्याकरणिक नियमों का पालन किया था। यह अचानक बंजर ट्रैक से अंकुरित नहीं हुआ है। इसकी पृष्ठभूमि में एक लंबी व्याकरणिक परंपरा जीवित थी, जिसने सबसे पहले उपलब्ध व्याकरणिक ग्रंथ, तोल्कप्पियम को बनाने के लिए भारी सामग्री प्रदान की थी।

तोल्कप्पियम की पुरातनता

पुरातत्व और ऐतिहासिक साक्ष्यों से साबित होता है कि तोल्कप्पियम कुछ दो हजार पांच सौ साल पहले उभरा था, जब पूरे भारतीय उप महाद्वीप पर कई राजाओं और सरदारों का शासन था। तोल्कप्पियम में बताया गया है कि तमिल भूमि पर 'तीन प्रसिद्ध महान संरक्षकों' (*வண்புகழ் மூவர்*), का शासन था। तोल्कप्पियम के प्रारंभिक पद्य में पांड्य राजा (भूमि का वहन करने वाले) के नाम का उल्लेख है। पांड्य राजा ने विशाल जलप्रपात में अपनी जमीन

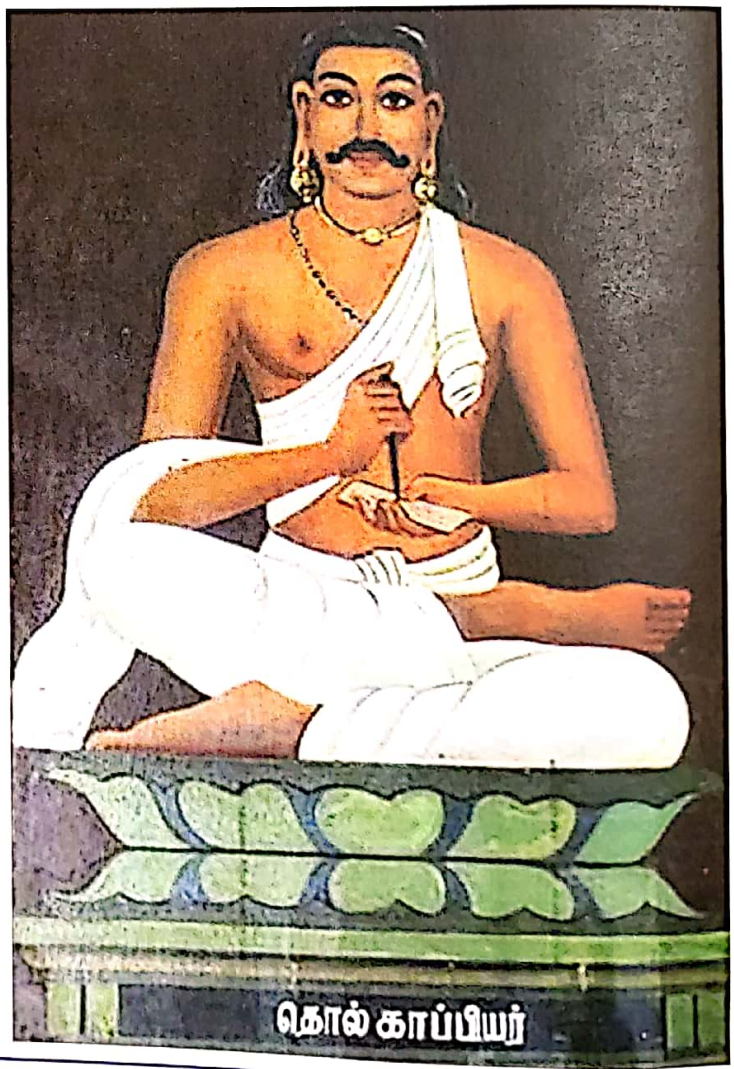

लेखक तमिल विश्वविद्यालय तंजावुर में साहित्य विभाग के विभागाध्यक्ष रह चुके हैं। ईमेल: mohr_d12@yahoo.co.in

Scanned with CamScanner

खो चुके तमिल लोगों को आवास स्थल दिया था। इसका स्पष्ट संदर्भ संगम के शास्त्रीय पुराण 'कलितोकई' में मिलता है।

जैसे समुद्र की लहरें भूमि को चीरती है,
टूट पड़े दुश्मनों पर निडर, निर्भीक, यशस्वी दक्षिणी राजा,
उनके जमीन को जब्त करने
बाघ और धनुष प्रतीकों को हटाया और मुहर लगाई[8]

इस महान जलप्रलय ने एक विशाल भूभाग को तबाह कर दिया था, जो हिंद महासागर के नीचे डूब गया था। इसलिए भूमिहीन लोगों के आप्रवासन की आवश्यकता थी। तोल्कप्पियम की प्रारंभिक कविता से पता चलता है कि तमिल भूमि की दक्षिणी सीमा 'कुमारी' थी, जो वास्तव में कुमरी पहाड़ियों का प्रतिनिधित्व करती है। उन दिनों तमिल भूमि वेंकटम पहाड़ियों और कुमारी पहाड़ियों के बीच थी। तोल्कप्पियम के आगमन से पहले, दक्षिण में भूमि को बड़े पैमाने पर आगे बढ़ाया गया था और ऑस्ट्रेलियाई महाद्वीप के करीब था।

सिंधु घाटी सभ्यता प्राचीन तमिल भाषी लोगों की है, और वहां प्राप्त लिपि जिसे रेव फ्रा हेरास और सर जॉन मार्शल ने समझाया, स्पष्ट रूप से मौजूदा तमिल लिपि से मेल खाते हैं। तोल्कप्पियार कुछ अक्षरों के लिपि रूप की ज़िक्र करते हैं, वे सिंधु घाटी लिपि से विकसित किए गए हैं। सिंधु घाटी लिपि में व्यंजन के ऊपर बिंदी नहीं होती है। तोल्कप्पियम में, बाद के विकास के रूप में उन्हीं अक्षरों पर बिंदी होते हैं-

"व्यंजन की प्रकृति बिंदियां है"

आस्कोपारपोला और इरावाथम महादेवन ने कहा था कि सिंधु लिपि मूल उत्पाद है और उन पर तमिलों का स्वामित्व है।[9] तोल्कप्पियार में कहा गया है कि कैसे दो अक्षरों वाला शब्द 'சாம்', जिसका अर्थ है अंतिम संस्कार, सहसंबंध में परिवर्तित होता है।[10] यह पुरातन तमिल भूमि के तमिलों को स्पष्ट रूप से बताता है कि यह भूमि मुर्दों को जलाने के लिए उपयोग की जाती थी। सिंधु घाटी की खुदाई भी इसी अभ्यास को दर्शाती है। अतः भाषिक और सांस्कृतिक सिद्धांत बताते हैं कि तोल्कप्पियम की उत्पत्ति कई प्राचीन स्रोतों से हुई थी, जिसमें सिंधु घाटी भी शामिल थी।

संगम युग के आठ ग्रंथों में, 'अहंनुरु' ने तीन श्लोकों में मौर्य राजाओं के दक्षिणी क्षेत्र पर आक्रमण को संदर्भित किया है। आक्रमण कब हुआ?

"तमिल देश पर मौर्य आक्रमण को लगभग ईसा पूर्व 298 से ईसा पूर्व 272 के बीच बिन्दुसार के शासनकाल में समझा जा सकता था।"[11]

प्रो नीलकंठ शास्त्री भी प्रो रामचंद्रन के उपर्युक्त दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। नंदों का ज़िक्र संगम काव्य में भी हुआ है। तोल्कप्पियम मौर्य और नंद काल से बहुत पहले उभरा था।

पूर्वसर्ग छंद

तोल्कप्पियम से पहले पानमपारनार द्वारा प्रस्तुत पद्य, तोल्कप्पियार के समकालीन पद्य की पंद्रह पंक्तियों में निम्नलिखित मूल्यवान जानकारी प्रदान करते हैं।

1. तोल्कप्पियम के समय में तमिल भूमि उत्तरी वेंकट पहाड़ियों और दक्षिणी कुमारी के बीच में थी। यह कुमारी उन पहाड़ियों को

दर्शाता है जो बाद में गायब हो गई थीं।

2. तोल्कप्पियम लिखित और बोलचाल के तमिल संस्करणों से संबंधित है जो तमिल भूमि में प्रबल थे।
3. तोल्कप्पियम एक तीन गुना काम है, जो अक्षर, शब्द, सामग्री के रूप में काम करता है।
4. तोल्कप्पियार ने प्राचीन तमिल कार्यों का उल्लेख किया था और अपने समय के सभी उपयुक्त सामग्रियों को एकत्र किया और एक त्रुटिहीन शोध प्रबंध के रूप में संकलित किया था।
5. तोल्कप्पियम को नीलमथारु थ्रूविल पांडियन नाम के पांड्य राजा के ज्ञानि दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। उस समय के अध्यक्ष थे अथानकोट्टु आसान। यह अथानकोट्टु आसान नैतिक न्याय का प्रतिपादक था और चारों वेदों के ज्ञाता थे।
6. तोल्कप्पियार इंद्र व्याकरण में महारत थे।
7. तोल्कप्पियम का लेखक तोल्कप्पियार है जो उसका सही नाम है और उनके द्वारा किए गए कार्य को उनका ही नाम दिया गया है।

कार्य का निर्माण एवं संरचना

तोल्कप्पियम एक व्याकरणिक कार्य है और यह तीन प्रमुख प्रभागों से है। वो हैं:

1. ऐलातु अतिकारम (எழுத்ததிகாரம்)- अक्षरों पर अध्याय।
2. कोल अतिकारम (சொல்லதிகாரம்) - शब्दों पर अध्याय
3. पोरुळ अतिकारम (பொருளதிகாரம்) - सामग्री एवं प्रपत्र पर अध्याय।

1. ऐलातु अतिकारम (எழுத்ததிகாரம்) - अक्षरों पर अध्याय

तमिल भाषा की वर्णमाला के इस अध्याय में नौ उप प्रभाग हैं। इनमें निम्नलिखित के बारे में यह बताया गया है।

Scanned with CamScanner

तीस प्राथमिक अक्षर 'a' से 'n' तक।
तीन आश्रित अक्षर, छोटी उ, छोटी ई 'और
तीन बिंदीदार अक्षर 'आयतम'।[13]

तीस प्राथमिक अक्षरों में बारह स्वर होते हैं, और अठारह व्यंजन होते हैं। अपनी बारी में बारह स्वरों में पांच लघु स्वर और सात लंबे स्वर होते हैं। व्यंजन में तीन किस्म हैं: कठोर व्यंजन, नरम व्यंजन और मध्य व्यंजन। स्वर और व्यंजन मिलकर स्वर व्यंजन बनते हैं, 12 × 18 = 216.

प्रत्येक अक्षर की ध्वनि को एक के रूप में मापा जाता है, और माप को मातिरै *'மாத்திரை'* (आंखों की पलकों का झपकना और उंगलियों का तड़कना) कहा जाता है।

तमिल में शब्द अक्षर या अक्षरों से बनता है। आमतौर पर एकल अक्षर वाले शब्द, दोहरे अक्षर वाले शब्द और बहु अक्षर वाले शब्द पाए जाते हैं। किसी शब्द में पहले आने वाले अक्षर और अंत के अक्षर क्या है, और शब्द में अक्षरों का क्रम पहले अध्याय में बताया गया है, और यह सब बताने के लिए नियम हैं।

अक्षरों का उद्भव

इस पहले अध्याय की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है 'अक्षरों का उद्भव'। इसमें यह बात उल्लेखनीय है।

नाभि से शुरू होने वाली श्वास वायु का
सिर, गले और छाती में वास,
दांत, होंठ, नाक और तालु द्वारा सक्रिय
संबद्धता के उस आठ प्रकार के साथ,
अलग-अलग पहचान वाले सभी अक्षरों का उद्भव,
घटन का पता चल जाता है[14]

प्रत्येक अक्षर का उच्चारण इस प्रकार सटीक रूप से निर्धारित होता है।

अक्षरों का सहसंयोजन

तोल्कप्पियम पहले अध्याय के छह खंडों को तमिल अक्षरों के सहसंयोजन के लिए आरक्षित करता है। उनमें निम्नलिखित शामिल है:

1. कौन सा अक्षर कौन से अक्षर के साथ सम्मिलित होगा?
2. सहवास में कठोर व्यंजन का होना।
3. जब दो स्वर मिलन की प्रक्रिया को रोकते हैं (अंतराल की रोकथाम)।
4. दो शब्दों के मेल पर स्वर या व्यंजन का खो जाना।
5. शब्दों के संयोजन में एक व्यंजन दूसरे व्यंजन में बदल जाता है।

तोल्कप्पियम शब्दों के संयोजन में तीन बड़े बदलाव बताते हैं। वे हैं: व्यंजन का परिवर्तन 'केइपिरिदल' *(மெய்பிறிதாதல்)*, एक व्यंजन का जोड़ *(மிகுதல்)* और एक व्यंजन का विलोपन 'मिगुदल' *(இயல்பு)*। इन तीनों के अलावा, बिना किसी बदलाव 'एयल्बु' *(இயல்பு)* के चौथे का भी उल्लेख है।

इस प्रकार पहला अध्याय अक्षरों, शब्दों के निर्माण और शब्दों के संयोजन में परिवर्तन के बारे में बताता है।

2. कोल अतिकारम *(சொல்லதிகாரம்)* – शब्दों पर अध्याय

यह अध्याय अधिकतर चार प्रकार के शब्दों से संबंधित है। वे हैं – संज्ञा, क्रिया, विभिन्न प्रकार के कण और अशिष्टता या गुण।

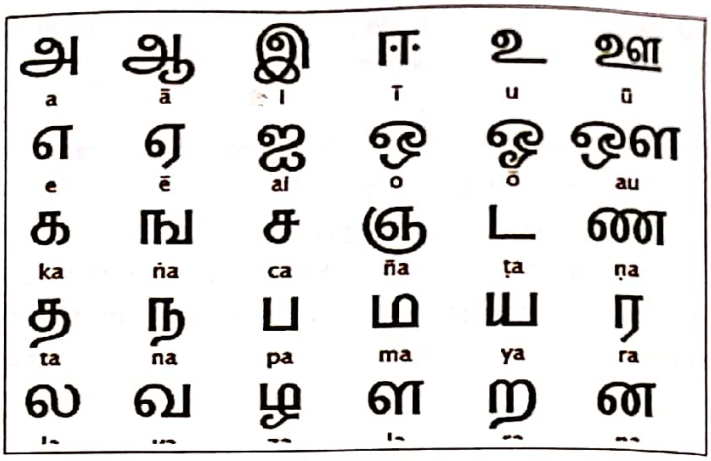

जब शब्दों का संयोग होता है, तब कुछ कण स्पष्ट रूप में दिखाई नहीं देते। ऐसे संयोजनों को 'टोकई' कहा जाता है। जब शब्द संयोजन के लिए एकजुट होते हैं, तब दो प्रकार के 'टोकई' या संयोजन पाए जाते हैं। वो हैं:

1. विकारी संयोजन *(வேற்றுமைத் தொகை)*
2. अविकारी संयोजन *(அல்வழித் தொகை)*

विकारी संयोजन में कारक उसमें आत्मसात है। पहली और आखिरी रूपांतरों के कोई कारक निर्धारक नहीं है। दूसरे कारक से सातवें कारक तक कारक निर्धारक निम्नानुसार हैं:

1. दूसरा कारक आरोपण कारक 'एयी'
2. तीसरा कारक करण कारक 'ओडू'
3. चौथा कारक सम्प्रदान कारक 'कू'
4. पांचवा कारक अपादान कारक 'इल'
5. छठा कारक अधिकारात्मक कारक 'अतु'
6. सातवां कारक अधिकरण कारक 'कण'

क्रिया के रूपांतर नहीं हैं। केवल संज्ञा विकारी है। कारकों के सभी प्रकार की गणना के बाद तोल्कप्पियार, रूपांतरों के परिवर्तन की ओर इशारा करने के लिए आगे बढ़ता है।

"कारक जो भी हो, रूपांतर की सीमा होती है।"[15]

इसके अनुसार, विषय वस्तु ही कारक को तय करता है।

कोलअतिकारम में सबसे उल्लेखनीय विशेषता पदार्थ के दो विभाग है – श्रेष्ठ प्राणी (उयर थिनै) और निम्न प्राणी (अहरिनै)। ये दोनों 'थिनै' आगे पांच लिंगों में विभाजित हैं। विभाजन इस प्रकार है:

1. पुल्लिंग	श्रेष्ठ प्राणी
2. स्त्रीलिंग	
3. लोगों का बहुवचन लिंग	
4. एकवचन लिंग	निम्नतर प्राणी
5. बहुवचन लिंग	

यह विभाजन स्पष्ट करता है कि यह मानवीय आवश्यकताओं और जरूरतों पर आधारित है। जहां श्रेष्ठ प्राणी के नर और मादा लिंग होते हैं, वहां निम्नतर के एक और बहु लिंग होते हैं। ये पांच लिंग वाक्यों के निर्माण में, वाक्य के उद्देश्य और विधेय के रूप में स्पष्ट प्रदर्शित होते हैं। तोल्कप्पियार का कहना है कि संज्ञा में लिंग का प्रत्यय और क्रिया अलग नहीं होनी चाहिए।

"क्रिया और संज्ञा में लिंग निरूपण भिन्न नहीं होनी चाहिए।"[16]

तोल्कप्पियार द्वारा ग्यारह लिंग प्रत्ययों को सूचीबद्ध किया गया

Scanned with CamScanner

है। हालांकि, तोल्कप्पियार की राय है कि कभी-कभी लिंग प्रत्यय के उपयोग में संज्ञा भिन्न हो सकती है। इसलिए कहा गया है कि क्रियाओं में लिंग प्रत्यय है। हालांकि बहुत सख्त व्याकरणिक परंपरा मौजूद थी कि क्रियाओं को कर्ता का लिंग दिखाना चाहिए, फिर भी कभी-कभी परंपरा का पालन नहीं किया जाता था और बाद के व्याकरणियों द्वारा इसे गलती नहीं माना जाता था और जानबूझकर की गई ऐसी त्रुटियों को 'स्वीकृत विचलन *(வழுவமைதி)*' कहा जाता है। यद्यपि तोल्कप्पियार अपने कहावतों में इस तरह के विचलन के बारे में कुछ नहीं कहते हैं, फिर भी टिप्पणीकारों ने अनुमान के माध्यम से कहा कि विचलन तोल्कप्पियम में स्पष्ट है।

क्रियाओं में तीन काल-भूत, वर्तमान और भविष्य को दिखाने की गुणवत्ता है। परिमित क्रिया स्पष्ट रूप से काल, अपीलीय क्रिया को दर्शाता है, और कहा जाता है कि काल की भावना को हटा देता है। ऐसी अपीलीय क्रियाओं का एक सर्वेक्षण यह सोचने के लिए मजबूर करता है कि वह वास्तव में विधेयात्मक संज्ञा है। तोल्कप्पियार तीन काल से संबंधित क्रियाविशेषणों के नौ रूपों को सूचीबद्ध करता है। मौखिक परंपरा के प्रभाव ने लिखित व्याकरण नियम के गठन में अनियमित काल गठन के स्थायी संकेत दिए हैं। तोल्कप्पियार, स्पष्ट रूप से काल और उनके गठन के उपयोग में स्वीकृत विचलन के लिए उल्लेख करते हैं।

> उच्चारण में जल्दबाजी की वजह से
> भविष्य और वर्तमान काल में,
> उपयोग में आने वाले मौखिक शब्द
> भूतकाल में कहने लायक बनते हैं[17]

यद्यपि तोल्कप्पियार काल निर्धारित करने वाले कृदंत के बारे में सचेत है, लेकिन वे प्रत्येक काल के लिए लागू काल निर्धारक कृदंत नहीं दे रहा है। क्रियाओं में समय की समझ अलग-अलग होती है; कभी-कभी क्रिया के प्रत्ययों में और कभी-कभी अलग-अलग संज्ञाओं के द्वारा भी होती है।

चार प्रकार के शब्द

तोल्कप्पियार चार प्रकार के शब्दों के बारे में बताते हैं और वे हैं:

1. ***இயற்சொல்*** इयरचोल (वह शब्द जो मूल तमिल भूमि में उपयोग में है)।
2. शिचोल (पर्यायवाची और समरूप)।
3. (तमिल भूमि के बारह भागों में उपयोग की बोली)। थियरचोल
4. उत्तरी भूमि के शब्द। वडचोल

उत्तरी भूमि के शब्द है पाली, प्राकृत और संस्कृत। यहां, तोल्कप्पियार जोर देते हैं कि उत्तरी शब्द को नहीं लिया जाना चाहिए क्योंकि यह उपलब्ध रूप में है; विदेशी अक्षर को हटा दिया जाना चाहिए और समान तमिल अक्षर को शामिल करना चाहिए। तोल्कप्पियार के समय तक, किसी विदेशी शब्द को स्वीकार करने के लिए कोई विनियमन नहीं था। इस संबंध में वे नियम निर्माता थे। इससे पहले, यानी ईसा पूर्व छठी शताब्दी से पहले, तमिल में किसी विदेशी शब्द का घुसपैठ नहीं हुआ है। उस समय तक शुद्ध तमिल युग रहा।

विशेषताओं में तोल्कप्पियार अपने अर्थ के साथ 124 शब्दों की गणना करता है। ये उस युग की कविताओं में लागू चयनात्मक प्रकृति

के शब्द हैं। बाद के युग में इससे काव्य रूपों में थिसॉरस, 'निगुंडु' और शब्दकोश विकसित हुए।

उपर्युक्त चार प्रकार के शब्दों और विशेषताओं की सूची सभी काव्य बनाने के लिए अभिप्रेत है।

वाक्यांशों का गठन

तोल्कप्पियार द्वारा छह प्रकार के दीर्घवृत्त वाक्यांशों को व्याकरणिक रूप से प्रस्तुत किया जाता है। वो हैं:

क) संज्ञा के विशेषण संबंध के साथ समानाधिकरण या कर्मधारय समास। ***(பண்புத்தொகை)*** पम्बुटोगै

ख) एक मौखिक जड़ के साथ दीर्घवृत्त समास। ***(வினைத்தொகை)*** विनैटोगै

ग) दीर्घवृत्त समास के साथ समुच्चय बोधक ***(உம்மைத்தொகை)*** उम्मैटोगै

घ) तुलना के संकेत के साथ दीर्घवृत्त समास।

ङ) कारक सूचक दीर्घवृत्त के साथ समास।

च) ऊपर कहे गए किसी एक समास पर आधारित दीर्घवृत्त समास जिसे लाक्षणिक रूप से उपयोग किया जाता है।

इन सभी दीर्घवृत्त वाक्यांशों को व्यापक रूप से लिखित और बोलचाल में उपयोग किया जाता है।

3. पोरुळ अतिकारम *(பொருளதிகாரம்)*– सामग्री एवं प्रपत्र पर अध्याय।

तीसरा अध्याय 'पोरुळ अतिकाराम' कविता की विषयवस्तु और रूपात्मक तकनीकों को दर्शाता है। कविता बनाने का कौशल और अभिव्यक्ति का सूक्ष्म तरीका व्याकरणिक रूप में स्पष्ट है। विषय-वस्तु और रूप तोल्कप्पियार के समय से बहुत पहले से थे और उनका समर्थन करने से और नए घटक जुड़ते हैं। पोरुळ अतिकारम इस व्याकरणिक कार्य का एक उल्लेखनीय हिस्सा है। इसमें कविता की सामग्री के बारे में बहुत बताया गया है और यह वास्तव में प्राचीन तमिलों के आंतरिक और बाहरी जीवन की एक विचित्रता है। इसके द्वारा, तोल्कप्पियार ने विश्व के प्रसिद्ध व्याकरणियों में अपना एक विशेष स्थान बना लिया है।

पोरुळ अतिकारम में, अहथ्थिनै (ईश्वरीय प्रेम और पारिवारिक जीवन से संबंधित विषय) और पुरथ्थिनै (वीरता, ममता, सम्मान, मित्रता और अन्य बाहरी विशिष्ट विशेषताओं से संबंधित विषय वस्तु) नामक दो प्रमुख प्रभागों को व्याकरणिक रूप से निपटा जाता है। इस तरह का विभाजन अन्य भाषाओं में विशिष्ट व्याकरणिक विशेषता नहीं

Scanned with CamScanner

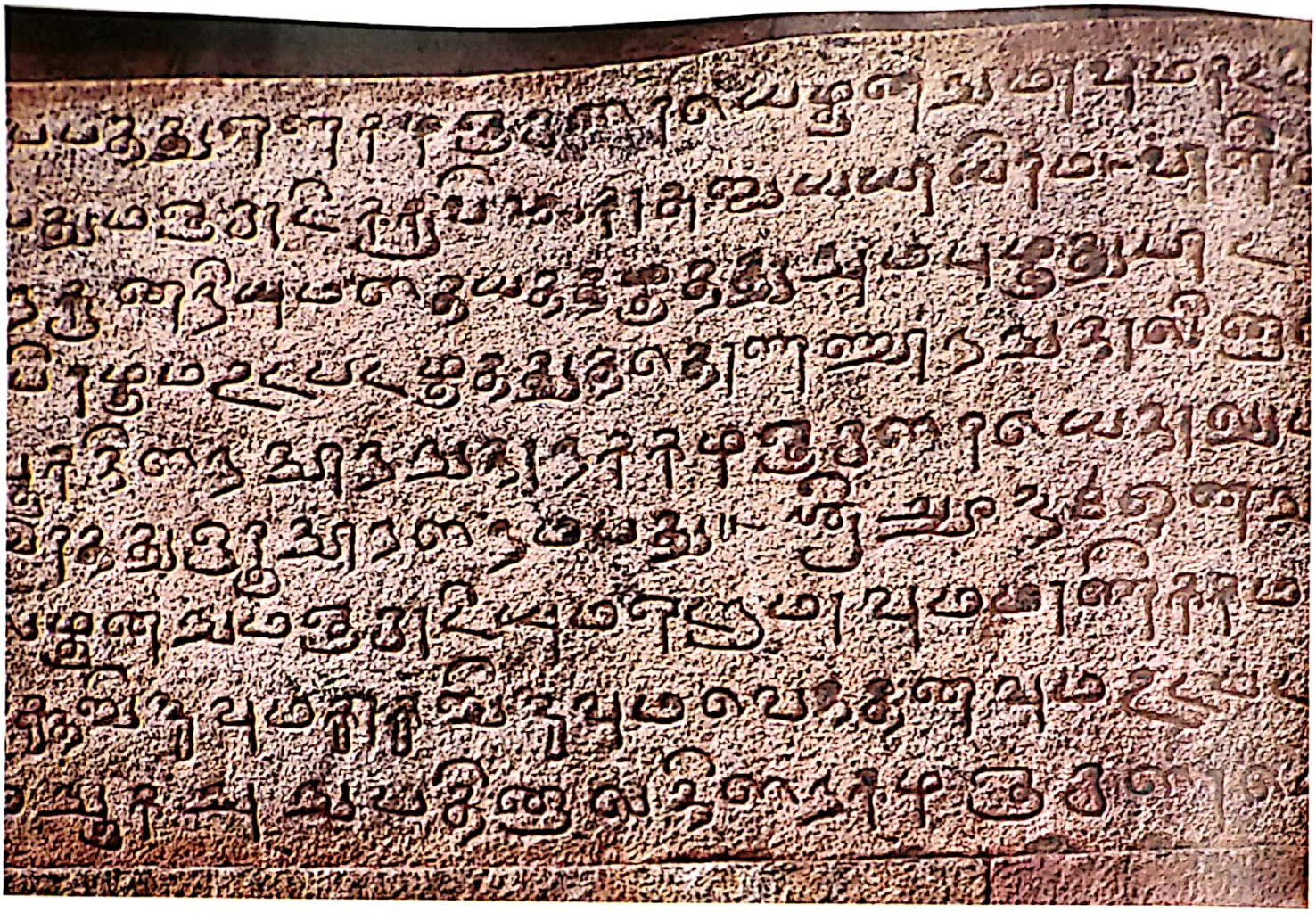

है। अन्य भाषाओं में व्याकरण केवल भाषाओं की भौतिक विशेषताओं से संबंधित है, अक्षरों से शुरू होकर वाक्यों और काव्य घटकों के गठन के साथ समाप्त होता है। 'थिनै' अर्थात गुण या चरित्र काव्यशास्त्र का एक विशेष और सबसे महत्वपूर्ण घटक है, यह घटक अन्य शास्त्रीय भाषाओं में उपलब्ध नहीं है।

नायक और नायिका के बीच प्रेम संबंध को अचानक उत्पन्न भावना नहीं मानते, बल्कि भाग्य का एक उत्साही आदेश मानते हैं और दो प्रेमी अपने सभी जन्मों में इस आदेश को पूरा करते हैं। गुप्त प्रेम मिलन केवल एक सहायक तथ्य है या भाग्य द्वारा उनको दिया गया मौका है।

"एकीकृत और विघटित करने के लिए, सभी जन्मों में होने वाला भाग्य, नायक और नायिका को पूरा करने के लिए है।"

माना जाता है कि वही जोड़ी सभी जन्मों में पति-पत्नी बनी रहती है।

प्रेम प्रसंग सभी चार भूमियों, 'मुलई' (जंगल और उसके आसपास), 'कुरिंजी' (पहाड़ियों और उसके आसपास), 'मरुथम' (कृषि पथ और उसके आसपास), 'नैथल (समुद्र और उसके आसपास) में होता है। तमिलनाडु में 'पालई' (रेगिस्तान), भूमि का विभाजन नहीं है। लेकिन कुरिन्जी (पहाड़ियां) और मुलई (जंगल) गर्मियों के मौसम में एक रेगिस्तान बन जाते हैं। ये सभी पांच विभाजन, अपने वनस्पतियों और जीवों, बदलते मौसम, दिन और रात, संगीत की लय, लोगों के पेशे, सब कुल मिलकर बनते हैं **'அன்பின் ஐந்திணை'** अनबिनैंदिनै (प्यार भरे जीवन के पांच चरण)।

उपर्युक्त पांच भौगोलिक विभाजन, उनके पर्यावरणीय कारकों के साथ पांच अलग-अलग मानसिक मनोदशा या दृष्टिकोण के आदी हैं और वे नीचे दिए गए जैसे है :

मुलाई - मिलन का इंतज़ार कर रहे प्रेमी
कुरिन्जी - प्रेमियों का मिलन
मारुथम - प्रेमियों द्वारा मुंह फेर लेना
नेथल - दयनीय मनोदशा
पलाई - जुदाई।

प्रत्येक 'थिनई' जीवन शैली का अपना उचित मौसम तथा दिन और रात समयांतराल होता है। पारंपरिक रूप से प्रत्येक भूमि एक विशेष भगवान की पूजा करने की आदी है। मुलई लोग मयोन, कुरिंजी लोग मुरुगा, मरुतम लोग इंद्र और नैथल लोग वरुण की पूजा करते हैं।

एक प्रेम कविता या अहथिनै कविता केवल चरित्र, नायक, नायिका, दासी माता या अन्य के उच्चारण में ही होनी चाहिए। कवि को प्रेम प्रकरण के बारे में सीधा उच्चारण करने का अधिकार नहीं है। सभी संगम प्रेम कविताओं में इस तरह की नाटकीय अभिव्यक्ति पूरी तरह से बनी हुई है।

प्रेम कविताएं दो प्रकार के तकनीकी कौशल को नियोजित करती थीं, जिन्हें **உள்ளுறை** 'उल्लुरै' (आत्मसात मुस्कान) और **இறைச்சி** 'इरैची' (सुझाव में गहराई) कहा जाता है, कई आलोचक इसे मनाते हैं। ये 'ध्वनि' सिद्धांत से अधिक है। इन दोनों में, पहला-उल्लुरै संबंधित भूमि के वनस्पतियों और जीवों पर आधारित है।

Scanned with CamScanner

पात्रों के गुणों को निरूपित करने के लिए कमल का फूल, लिली, चमेली, कुत्ता, गाय, बाघ, भालू, हाथी, केकड़ा, मगरमच्छ, मधुमक्खी, मछली, शार्क, आम फल, कटहल, केला, गन्ना, बांस और ऐसी कई अन्य चीजों का प्रतीक बताया गया है। खूबसूरती, अनुग्रह, सहानुभूति, घृणा, क्रूरता, क्रोध और इस तरह के अन्य भाव, सभी प्रतीकात्मक रूप से सचित्र है। सुझाव गहराई से अधिक सूक्ष्म है और अच्छी प्रतिभा के हैं और उपलब्ध पाठ के माध्यम से झांकने के आदी लोगों द्वारा माना जा सकता है। ये दोनों तकनीकें प्राचीन प्रेम कविता की पहचान है, जो अन्यत्र नहीं पाई जाती है।

तोल्कप्पियार के मैपत्तियल (आठ प्रकार की आंतरिक भावनाओं की अभिव्यक्ति) नामक एक उपखंड, जिन्हें रस कहा जाता है, को बड़े पैमाने पर निपटाया जा रहा है। यहां, मनुष्य के अंदर से अनियंत्रित रूप से निकलने वाले विभिन्न प्रकार की भावनाएं- मुस्कान, रोना, घृणा, चौंकाना, डर, कपट, क्रोध और प्रसन्नता तोल्कप्पियार द्वारा उत्कृष्ट रूप से चित्रित आठ अतिरंजित प्रेरणाएं हैं। प्रेमियों के बीच बहुत ही सूक्ष्म रूप से व्यक्त रोमांच और परमानंद को शानदार तरीके से वार्तालाप में चित्रित किया गया है। इनके नमूने इस प्रकार हैं:

मिलन की आस में, माथे से पसीना छूटा,
मुस्कान को छिपाते हुए, मन की भावनाओं को रोका,
नायिका की चार अभिव्यक्तियों का प्रथम माप है
बाल खोलना, कान की बालियों को निकालना,
गहनों की रगड़, पुनः ड्रेसिंग
नायिका की चार अभिव्यक्तियों का दूसरा माप है।
इस तरह अतिरंजित प्रेरणाओं का वर्णन होता है।

काव्यों के उपविभाग में, पद्य को उसके रूप और सामग्री बनाने की कला एक भव्य शैली में दी गई है। कविता के विभिन्न घटकों का वर्णन किया गया है और कविता के नियमों को विस्तार से बताया गया है। 'माथिरै' (आंखों का फड़कना और अंगुलियों का चटकना) नामक अक्षर ध्वनि को मापने के पैमाने से शुरू कर अक्षर, शब्दांश, माप, कदम, बनावट, पुरातन, लय, बंधन दृश्य, छंद की विविधता, क़दमों की गणना, प्राचीनता, जीवन शैली, कथन, श्रोता, कार्रवाई का स्थान, समय, उपयोग, प्रेरणा, शेष, इरादा, विषय, उपखंड, संबद्धता और ताल, ये सभी छब्बीस घटक और आठ सौंदर्य तत्व, कुल मिलाकर एक साथ चौंतीस को कविता के घटक के रूप में सूचीबद्ध और वर्णित किया गया है।

तोल्कप्पियम में **'மரபியல்** 'मरबियल' कहा जाने वाला एक उपखंड है, जो वंशानुगत कारकों और वनस्पतियों और जीवों की पारंपरिक संपत्तियों की गणना करता है। तोल्कप्पियार जीवित प्राणियों में छह इंद्रियों के विकासवादी विकास को इंगित करता है।

पहला भाव शारीरिक बोध है।
उसके साथ दूसरा जीभ का है।
उनके साथ तीसरा नाक का है।
उनके साथ चौथा आंख का है।
उनके साथ पांचवां कान का है।
उनके साथ छठा है मन का।
तो भक्ति हो गई, अच्छी तरह से साकार।

तोल्कप्पियार कहते हैं कि इस तरह के इंद्रियों से संबंधित सभी तमिलों के बीच प्रचलित प्राचीन सिद्धांत हैं। हरियाली और पेड़ एक ही अर्थ के हैं; घोंघे और शंख दो इंद्रियों के होते हैं; दीमक और चींटियां तीन इंद्रियों की होती हैं; केकड़ा और मधुमक्खी चार इंद्रियों के हैं; पशु और पक्षी पांच इंद्रियों के हैं; मनुष्य छह इंद्रियों के हैं। वनस्पतियों के विभिन्न चरण-नवोदित, पुष्पक, मुरझाने, सड़ने की अवस्था और प्रत्येक चरण में उनके नाम बताए गए हैं। विभिन्न जंतुओं के बच्चों के नाम भी बताए गए हैं। संक्षेप में, इस काम का यह हिस्सा वास्तव में प्राचीन तमिलों के उपयोग में पाए जाने वाले वैज्ञानिक कारकों का व्याकरण है।

संक्षेप में पुरातन तमिल व्याकरण तोल्कप्पियम में कई विलक्षणताएं हैं जैसे,

1. बोली और लिखित भाषा का व्याकरण।
2. एक व्याकरण जिसने व्याकरणिक परंपराओं के पिछले विशेषज्ञता को दर्ज किया है।
3. एक व्याकरण जिसमें 'पोरुळतिकारम' जीवन के दो तह, अहम् और पुरम है।
4. एक व्याकरण जो न केवल भाषा के उपयोग, बल्कि सांस्कृतिक इतिहास और प्राचीन तमिल भूमि के भौगोलिक और पर्यावरणीय अध्ययनों, प्राचीन तमिल लोगों के मनोवैज्ञानिक चिंतन और आध्यात्मिक संदेहों और इससे परे प्राचीन तमिल पारम्परिक कविता बनाने की तकनीकों से संबंधित है।

तमिलों का सौभाग्य है कि अपने गौरवशाली यशस्वी पूर्वजों की कई मूल्यवान कृतियों को नष्ट होने से बचाकर तोल्कप्पियम को बिना कोई नुकसान पहुंचाए फिर से प्राप्त कर सकते हैं। ■

संदर्भ

1. M.S.Puranalingam Pillai, Tamil Literature, p. 23. "Agattiyam is said to have been the grammar for the first Sangam, while the work together with the Tholkappiam and three other works formed the grammar for the second Sangam", Nilakanta Sastri, History of South India, p. 16; E.S.Varadaraja Iyer, Tholkappiam, Porulathikaram, p. xv; A.L.Basham, The Wonder that was India, p.462.
2. மா.இராசமாணிக்கனார், தமிழ்மொழி இலக்கிய வரலாறு, பக். 87-88.
3. தொல்காப்பியம், எழுத்ததிகாரம், இளம்பூரணர் உரை, நூற்பா 7.
4. மேலது, நூற்பா 370.
5. மேலது பொருளதிகாரம், நூற்பா 310.
6. மேலது, நூற்பா. 384.
7. மேலது, நூற்பா 646.
8. கலித்தொகை, 104:1-4.
9. ஐராவதம் மகாதேவன், சிந்துவெளிப் பண்பாடும் சங்க இலக்கியமும், பக். 15-16.
10. தொல்காப்பியம், எழுத்ததிகாரம், நூற்பா 329.
11. C.E.Ramachandran, Ahananuru in its Historical Setting, p. 63.
12. Nilakanta Sastri, History of South India, p. 22.
13. தொல்காப்பியம், எழுத்ததிகாரம், நூற்பா 1.
14. மேலது, நூற்பா 83.
15. மேலது, சொல்லதிகாரம், நூற்பா 102.
16. மேலது, நூற்பா 11.
17. மேலது, நூற்பா 236.

Scanned with CamScanner

मराठी साहित्य

श्रीधर नांदेड़कर

"महाराष्ट्र के इतिहास के निर्माण और विचार, विश्वास और व्यवहार के नए तरीकों के विकास में भगवान विट्ठल की आराधना का विराट योगदान है। अगर ज्ञानेश्वर और नामदेव का प्रादुर्भाव नहीं हुआ होता तो महाराष्ट्र का इतिहास ही एकदम भिन्न होता।"

- न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानाडे (राइज़ ऑफ दि मराठा पावर)

मराठी साहित्य की परंपरा करीब सात सौ साल पुरानी है। इसका प्रारम्भ प्राचीन यादव राजवंश से होता है। मराठी साहित्य की आधारशिला 'महानुभाव पंथ' और 'वारकरी (विट्ठल अर्थात् कृष्ण-भक्ति) संप्रदाय' के संतों ने रखी जो 'नाथ पंथ' (9वीं-10वीं शताब्दी) से प्रभावित थे।

नाथ पंथ मध्यकालीन आंदोलन था। यह बौद्ध, शैव और योग परम्पराओं से प्रेरित था। गुरु गोरखनाथ को इस पंथ का प्रवर्तक माना जाता है। नाथ परंपरा पर शैव दर्शन का व्यापक प्रभाव था जिससे संबंधित अधिकांश साहित्य 11वीं शताब्दी और उसके बाद से उपलब्ध है। नाथ पंथ पर अद्वैत वेदान्त जैसी भारतीय परम्पराओं का भी प्रभाव है। इस पंथ ने वैष्णव और शाक्तपरम्पराओं, महानुभाव पंथ और भक्ति आंदोलन को प्रभावित किया।

महानुभाव पंथ की स्थापना सर्वज्ञ श्री चक्रधर स्वामी ने की। उनका जीवन काल बारहवीं शताब्दी में माना जाता है। इस पंथ में, बिना किसी जातिगत भेदभाव के, सभी को स्वीकार किया जाता था। महानुभाव साहित्य में देवताओं के अवतारों की कथाएं, पंथ का इतिहास,भगवद्गीता की व्याख्याएं और भगवान कृष्ण की लीलाओं के वर्णन आदि के जरिए पंथ के सिद्धांतों और विचारों को व्यक्त किया गया है।

'लीला चरित्र को' मराठी भाषा में लिखी गई पहली जीवनी माना जाता है। इसे महिमभट (1278) ने लिखा। उनकी दूसरी प्रमुख रचना 'श्री गोविंद प्रभु चरित्र' है जो श्री चक्रधर स्वामी के गुरु थे। यह संभवत: 1288 में, श्री गोविंद प्रभु के निधन के बाद लिखी गई। 1288 से 1418 के दौरान केशवराज सूरी, नरेंद्र, भास्करभट्ट बोरीकर, दामोदर पंडित, रवलोबास, नारायनबास बहाहालिए और विश्वनाथ बालापुरकर ने महानुभाव साहित्य का सृजन किया। इसमें से ज्यादातर साहित्य पुराने मराठी गद्य में है।

यादव राजाओं की राजधानी - देवगिरि में मराठी भाषा के विद्वानों को प्रश्रय मिला और अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर मिला। मराठी साहित्य का उद्भव तथा विकास यादव वंश के उत्थान से सीधे जुड़ा है। यादव सरदार पहले पश्चिमी चालुक्य वंश के राजाओं के सामंत थे। चालुक्य सत्ता के कमजोर पड़ने पर, 12वीं शताब्दी के मध्य में यादवों ने अपने को स्वतंत्र राजा घोषित कर दिया। उन्होंने मराठी को अपने दरबार की भाषा बनाया।

महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन 13वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ। यादवों के शासन-काल में संत-परंपरा शुरू हुई। वैदिक परंपरा जाति प्रथा और रूढ़ रीति-रिवाजों में खो सी गई। यह समय सामाजिक पतन, गरीबी, भय और हताशा का था। भक्ति आंदोलन ने वंचित वर्गों को

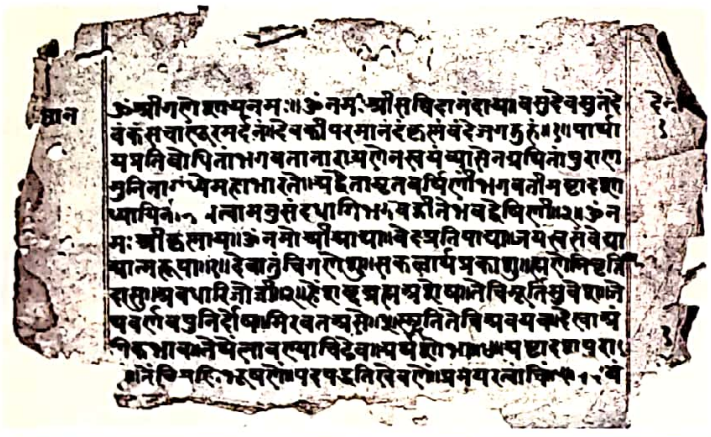

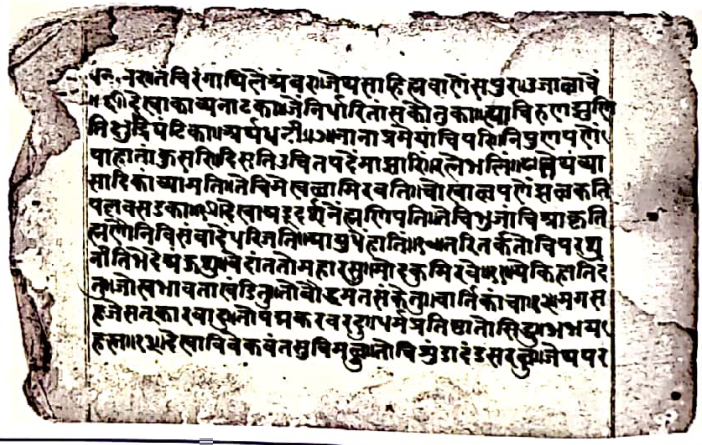

लेखक कवि, समालोचक एवं संपादक हैं। वे एमएसपी मंडल आर्ट एंड कॉमर्स कॉलेज औरंगाबाद में पढ़ाते हैं। ईमेल: shri.nandedkar@gmail.com

Scanned with CamScanner

संत ज्ञानेश्वर

नामदेव महाराज

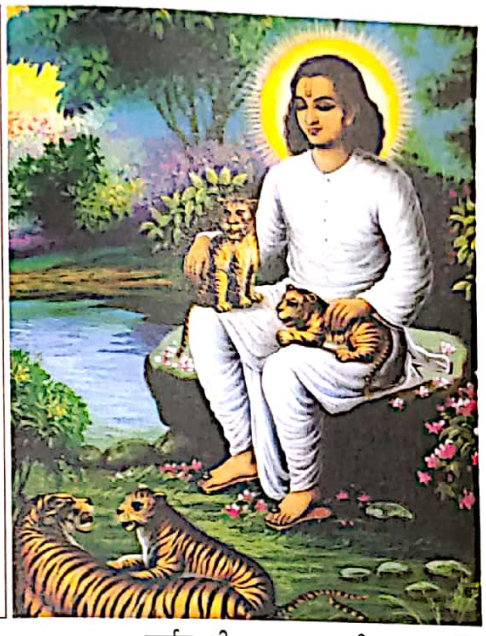

सर्वज्ञ श्री चक्रधर स्वामी

अमानवीय स्थितियों से मुक्त करने और उन्हें बिना किसी बाधा के ईश्वर की पूजा-आराधना का अधिकार देने का बीड़ा उठाया और उपासना तथा मुक्ति का एक नया मार्ग प्रशस्त किया। भक्ति आंदोलन ने असमानता और रूढ़ियों को नकार दिया।

भक्ति आंदोलन ने असंख्य निर्धनों-वंचितों के मन आंदोलित कर दिए। संतों ने स्थानीय जन-भाषा में भक्ति-गीत गाए। बड़ी संख्या में आम जन वारकरी पंथ से जुड़ने लगे। उन्हें लगा कि यहां उन्हें स्वीकार्यता, सम्मान और ईश्वर तक पहुंचने का मार्ग मिल रहा है। वारकरी पंथ ने भेद-भाव तथा असमानता का विरोध किया और लोगों को भाव-भक्ति की प्रेरणा दी।

इस काल में पहली बार मराठी में श्रेष्ठ साहित्य का सृजन हुआ। इस काल में, भाषा और साहित्य में, मानव जीवन के उच्च मूल्यों की स्थापना हुई। भक्त कवियों ने ईश्वर के प्रति समर्पण पर बल दिया। उन्होंने अपने लेखन से अपने समय की रूढ़ियों के खिलाफ विद्रोह किया। तीर्थों की यात्राएं करते हुए इन संतों ने जन-साधारण को जागृत किया, उन्हें अशिक्षा के अंधकार से बाहर निकाला।

इस प्रारम्भिक काल की साहित्यिक शैली को प्राचीन मराठी कहा जाता है। भास्करभट्ट बोरीकर मराठी में भजन लिखने वाले प्रथम कवि थे। उनके बाद संत ज्ञानेश्वर (1275-1296) ने 'अमृतानुभव' और 'भावार्थ दीपिका' लिख कर जन-जन तक भाव-भक्ति का संदेश पहुंचा दिया। उन्हें मात्र 21 वर्ष की आयु मिली लेकिन उनकी रचनाओं ने महाराष्ट्र ही नहीं, देश भर में भक्ति-सुधा बरसाई। 'भावार्थ दीपिका' को उसके अधिक चर्चित नाम 'ज्ञानेश्वरी' से जाना जाता है। इसमें 9000 छंदों में भगवद्गीता के भावार्थ को सरलता और मधुरता से समझाया गया है। संत ज्ञानेश्वर ने अद्वैत वेदान्त, शिव और विष्णु की एकरूपता का संदेश दिया लेकिन उनका मन ईश्वर के सगुण रूप-पंढरपुर के भगवान विट्ठल की आराधना में रचा-बसा था। उन्होंने मराठी साहित्य में भक्ति-भाव को विट्ठल स्तुति से एकाकार कर दिया। बाद में संत एकनाथ और संत तुकाराम ने इस भक्ति-आंदोलन को नई ऊंचाइयां दीं।

इस काल के बाद के प्रमुख कवियों में नामदेव तीसरे थे। वह पेशे से दर्जी थे। वह बड़े प्रतिभाशाली कवि थे। उनकी भाषा, अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक है जिसमें छंदों और शैली की शुद्धता का ध्यान रखा गया है। उन्होंने प्रभु की आराधना में 'अभंग' लिखे। 1200-1350 ई. तक के इस काल को हम मराठी साहित्य का प्रथम अथवा प्रारम्भिक काल कह सकते है। इस काल में मुख्यत: अध्यात्म और ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति का साहित्य रचा गया। नामदेव की रचनाओं का जन-साधारण पर इतना गहरा प्रभाव था कि उनका परिवार और उनकी परिचारिका भी उनकी भक्त हो गई। 14वीं शताब्दी के मध्य में, नामदेव के निधन के करीब दो सौ वर्ष बाद तक मराठी में कोई उल्लेखनीय साहित्य-रचना नहीं हुई।

इस पंथ में, बिना किसी जातिगत भेदभाव के, सभी को स्वीकार किया जाता था। महानुभाव साहित्य में देवताओं के अवतारों की कथाएं, पंथ का इतिहास, भगवद्गीता की व्याख्याएं और भगवान कृष्ण की लीलाओं के वर्णन आदि के जरिए पंथ के सिद्धांतों और विचारों को व्यक्त किया गया है। 'लीला चरित्र को' मराठी भाषा में लिखी गई पहली जीवनी माना जाता हैं। इसे महिमभट (1278) ने लिखा। उनकी दूसरी प्रमुख रचना 'श्री गोविंद प्रभु चरित्र' है जो श्री चक्रधर स्वामी के गुरु थे।

14वीं शताब्दी के मध्य से 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ से महाराष्ट्र में मुख्यत: मुस्लिम शासकों का दौर रहा और राज-काज की भाषा फारसी बन गई। यह राजनैतिक अनिश्चितताओं और सामाजिक अस्थिरताओं का दौर था। इस दौर में मराठी साहित्य में प्राय: शून्यता रही। संत एकनाथ का जन्म 1518 में हुआ और उन्होंने संत ज्ञानेश्वर की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए, मराठी साहित्य को नया उन्मेष दिया।

मराठी साहित्य का तीसरा और सबसे उर्वर काल 17वीं शताब्दी के प्रारम्भ से पेशवा शासन की समाप्ति (18वीं शताब्दी के दूसरे

Scanned with CamScanner

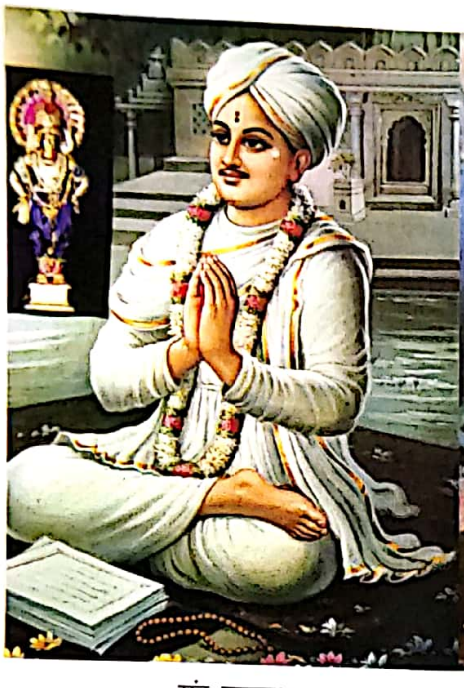

संत एकनाथ

संत तुकाराम

दशक तक) तक रहा। 17वीं शताब्दी के प्रारम्भ में, 1603 ई. के आस-पास तीन महाकवियों - समर्थ रामदास, संत तुकाराम और संत मुक्तेश्वर का जन्म हुआ। मराठी साहित्य के महानतम कवियों में एक- संत तुकाराम ने संयम, सहिष्णुता और भक्ति का संदेश दिया। उन्होंने ऊंची जातियों द्वारा थोपी गई सामाजिक व्यवस्था का विरोध किया। उन्होंने भक्ति आंदोलन को नई बुलंदियां दीं। वह वारकरी संप्रदाय से संबद्ध थे। उन्होंने 'अभंगों' की रचना की। मराठी साहित्य में 'अभंग' छंदबद्ध (परंपरागत रूप से 'ओवि' छंद में) काव्य-रचनाएं हैं जिनकी भाषा सरल होती है, सीधा संदेश होता है और लोक-गाथाओं का उल्लेख करते हुए गहरा आध्यात्मिक संदेश दिया जाता है।

तुकाराम का सबसे बड़ा योगदान स्थानीय भाषा का इस्तेमाल है जबकि उनके पूर्ववर्ती ज्ञानेश्वर और नामदेव में भी विचारों की गहराई के साथ-साथ शैली का सौंदर्य है। उनकी रचनाओं का संग्रह 'तुकारामगाथा' के नाम से उपलब्ध है। इन 'अभंगों' में मानवीय भावनाओं और अनुभवों की विविधता है। कुछ 'अभंग' आत्मकथात्मक भी हैं। कुछ 'अभंगों' में 'प्रवृत्ति' (दुनियादारी, घर-परिवार के धंधों में लिप्त होना) और 'निवृत्ति' (सभी लिप्साओं-वासनाओं का त्याग और एकमात्र मोक्ष-प्राप्ति की आकांक्षा) के विचारों के बीच संवाद भी है।

रामदास गहरी अंतर्दृष्टि वाले संत थे। वह प्रेरणा देने वाले, ओजस्वी उपदेशक थे। उनकी रचना 'दासबोध' में अमूर्त ईश्वर के साथ-साथ व्यावहारिक विषयों की भी चर्चा है। मुक्तेश्वर ने महाभारत का मराठी में अनुवाद कर जन-साधारण को प्रेरित किया। इन दो शताब्दियों में अनेक श्रेष्ठ कवियों ने साहित्य को समृद्ध किया। इनमें वामन पंडित, श्रीधर, मोरोपंत और महीपति प्रमुख थे। 17वीं शताब्दी में ऐतिहासिक घटनाओं के 'पोवाडा' कहे जाने वाले लोक गायन की 'शाहिर' परंपरा भी बहुत लोकप्रिय हुई। इस काव्य में मुख्यत: वीर रस के और शिवाजी के कृत्यों के यशोगायन की परंपरा है।

इस दौर के बाद और पेशवा सत्ता के पतन से पहले, मराठी कविता में हल्के विषय लिए जाने लगे और मौज-मस्ती की कविता भी रची जाने लगी।

मराठी साहित्य का चौथा काल 19वीं सदी के उत्तरार्ध और 20वीं सदी के पूर्वार्ध का है। ब्रिटिश शासन के इस दौर में साहित्यिक गतिविधियों की ख़ासी गहमा-गहमी रही। इस दौर में छपाई का काम उन्नत होने से बहुत से प्रकाशन सामने आए। प्राचीन लेखकों की अनेक रचनाएं खोज निकाली गईं और प्रकाशित की गईं। इतिहास, दर्शन, धर्म, चिकित्सा, विधि और साहित्य जैसे विषयों पर अंग्रेजी और संस्कृत में लिखे ग्रन्थों के मराठी में अनुवाद किए गए। लेकिन कविता के क्षेत्र में आधुनिकता को सहज में स्वीकार नहीं किया गया।

विष्णु वामन शिरवाडकर (व्ही.वा. शिरवाडकर और कुसुमाग्रज नाम से प्रसिद्ध-1912-1999) 1940 के दशक से अगले पांच दशकों तक साहित्य-साधना में संलग्न रहे। इस अग्रणी कवि, नाटककार, उपन्यासकार, कथाकार ने विपुल साहित्य रचा। 1942 में लिखे उनके गीत-संग्रह 'विशाखा' ने स्वतंत्रता-संघर्ष की ओर अपने समय की पीढ़ियों को प्रेरित किया। अनेक सम्मानों के साथ-साथ उन्हें 1987 में भारतीय साहित्य के सर्वोत्कृष्ट ज्ञानपीठ पुरस्कार से भी नवाजा गया।

देश की स्वतंत्रता के बाद प्रथम दशक की मराठी कविता को 'नवकविता' नाम दिया गया। इन नए कवियों में, बाल सीताराम मार्डेकर और विन्दा करंदीकर (उपनाम: गोविंद विनायक करंदीकर) अग्रणी थे। 2006 में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित, विन्दा करंदीकर श्रेष्ठ समालोचक और निबंध-लेखक भी थे। उन्होंने अपने समय के तीव्र परिवर्तनों वाले यथार्थ और विद्रोह-चेतना को व्यक्त किया। इसके बाद,'साठोत्तरी' पीढ़ी ने मराठी कविता के विकास में बड़ा योगदान किया। शरच्चंद्र मुक्तिबोध इनमें अग्रणी थे जिन्होंने मराठी कविता की मुख्य धारा को समृद्ध किया। उनकी कविता ने मार्क्सवादी नजरिए से मध्यम वर्ग के सरोकारों को अभिव्यक्ति दी। ये सभी कवि एक ही समय में लिख रहे थे लेकिन उनके अंदाज़ और मिजाज में बड़ी विविधता थी।

1960 के बाद के कवि लघु पत्रिका आंदोलन से उभर कर आए और मराठी साहित्य की मुख्य धारा में अपने लिए जगह

मराठी साहित्य का उद्भव तथा विकास यादव वंश के उत्थान से सीधे जुड़ा है। यादव सरदार पहले पश्चिमी चालुक्य वंश के राजाओं के सामंत थे। चालुक्य सत्ता के कमजोर पड़ने पर, 12वीं शताब्दी के मध्य में यादवों ने अपने को स्वतंत्र राजा घोषित कर दिया। उन्होंने मराठी को अपने दरबार की भाषा बनाया। महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन 13वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ। यादवों के शासन-काल में संत-परंपरा शुरू हुई।

Scanned with CamScanner

बनाने में सफल हुए। उन्होंने मराठी कविता में नई जान फूंकी। वे अपनी साहित्यिक परम्परा की जड़ें तलाशने में सफल रहे और उसके साथ जुड़े रहे।

मराठी में संगीत नाटक और तमाशा के रूप में लोक-नाट्य की लंबी परंपरा रही है। 19वीं शताब्दी के मध्य से मराठी रंगमंच का विकास शुरू हुआ। 1970 के दशक के बाद तो मराठी और बांग्ला नाटक-लेखन और रंगमंच देश के सबसे लोकप्रिय और स्तरीय नाट्य-प्रदर्शनों में अग्रणी हो गए। नाटक-लेखन और मंचन में नए-नए, प्रतिभाशाली प्रयोग हुए। विजय तेंदुलकर इस दौर में, मराठी ही नहीं, राष्ट्रीय पहचान वाले नाटककार बने। उनके अलावा पुरुषोत्तम लक्ष्मण देशपांडे, महेश एलकुंचवार और सतीश आलेकर इस दौर के प्रमुख नाटककार और रंगकर्मी रहे जिन्होंने अन्य भारतीय भाषाओं के नाटककारों और रंगकर्मियों को राह दिखाई। आदर और स्नेह से 'पु.ल. के नाम से लोकप्रिय, 'महाराष्ट्र के लाडले व्यक्तित्व' कहे जाने वाले पुरुषोत्तम लक्ष्मण देशपांडे ने हास्य-व्यंग लेखक तथा मंच और सिनेमा के अभिनेता के रूप में विशिष्ट पहचान बनाई।

मराठी साहित्य के महानतम कवियों में एक - संत तुकाराम ने संयम, सहिष्णुता और भक्ति का संदेश दिया। उन्होंने ऊंची जातियों द्वारा थोपी गई सामाजिक व्यवस्था का विरोध किया। उन्होंने भक्ति आंदोलन को नई बुलंदियां दीं। वह वारकरी संप्रदाय से संबद्ध थे। उन्होंने 'अभंगों' की रचना की। मराठी साहित्य में 'अभंग' छंदबद्ध (परंपरागत रूप से 'ओवि' छंद में) काव्य-रचनाएं हैं जिनकी भाषा सरल होती है, सीधा संदेश होता है और लोक-गाथाओं का उल्लेख करते हुए गहरा आध्यात्मिक संदेश दिया जाता है।

1960 के बाद, दलित-वंचित वर्गों के शिक्षित जनों ने डॉ. आंबेडकर के विचारों से प्रेरित होकर अपनी रचनाशीलता के जरिए शोषण और गरीबी से संघर्ष को अभिव्यक्त किया। व्यवस्था का विरोध और सशक्त आत्म-चेतना दलित लेखन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं। दलित आंदोलन ने मराठी साहित्य को एक नई छवि दी। नामदेव ढसाल और प्रकाश जाधव इस आंदोलन के सबसे सबल हस्ताक्षर थे। 1980 के बाद, अरुण काले इस आंदोलन के प्रमुख कवि के रूप में उभर कर आए।

वैश्वीकरण ने 1990 के बाद की मराठी कविता पर गहरा प्रभाव डाला। कवयित्रियों ने भी अपनी गहन अनुभूतियों से मराठी कविता को समृद्ध किया। कविता महाजन, प्रज्ञा दया पवार, कल्पना दुधाल और योगिनी सातरकर-पांडे इस दौर की महत्वपूर्ण कवयित्रियां हैं।

मराठी साहित्य में उपन्यास (मराठी में उपन्यास को 'कादंबरी' कहा जाता है) बहुत लोकप्रिय विधा है। 18वीं शताब्दी में मराठी में उपन्यास-लेखन का प्रारम्भ हुआ और 19वीं शताब्दी से पहले ही यह विधा काफी लोकप्रिय हो गई। पेशवा शासन की समाप्ति के बाद (1818 ई.) और ब्रिटिश शासन का दौर शुरू होने पर, मराठी साहित्य की सभी विधाओं ने नया स्वरूप ग्रहण किया। पाश्चात्य साहित्य ने मराठी साहित्य को ताजगी और नए क्षितिज प्रदान किए। यह एक तरीके से जागरण का समय था। पश्चिमी लेखन शैली का प्रभाव मराठी उपन्यास पर पड़ा।

बाबा पद्मनजी मुले का लिखा 'यमुना पर्यटन' (1857) मराठी का प्रथम प्रमुख उपन्यास है। पाश्चात्य साहित्य के प्रायः सभी

Scanned with CamScanner

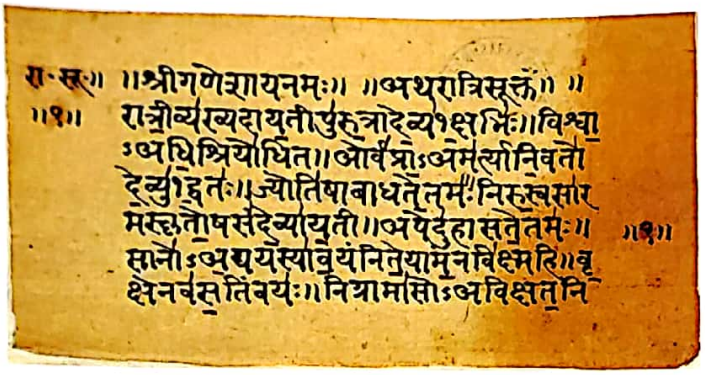

प्रमुख उपन्यासों का मराठी में निरंतर अनुवाद किया जाता रहा है। मुद्रण-क्रांति ने पुस्तकों का प्रकाशन आसान कर दिया। हरि नारायण आप्टे (1864-1919) 19वीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशकों तक के दौर (लेखन काल: 1885-1920) के सबसे प्रभावशाली उपन्यासकार रहे। वह ऐसे प्रथम मराठी उपन्यासकार थे जिन्होंने उपन्यास के उद्देश्य, उसके तत्वों और प्रभावों को ठीक से समझा। उपन्यास व्यक्ति ही नहीं, समाज की भी मन:स्थिति को उजागर करता है। उन्होंने इस बात को समझा कि अपना देश, समाज, संस्कृति, रीति-रिवाज, परम्पराएं तथा जीवन-मूल्य मिलकर किसी उपन्यास के भाव-जगत का निर्माण करते हैं। उनके समकालीन किसे भी उपन्यासकार ने इतनी गहन दृष्टि के साथ जीवन के सरोकारों का अनुसंधान और समीक्षा नहीं की। इस तरह, आप्टे का मराठी उपन्यास के क्षेत्र में अमर स्थान बना रहेगा।

नारायण सीताराम फडके (1894-1978) भी एक प्रमुख उपन्यासकार थे जिनके रूमानी उपन्यास अनेक दशकों तक काफी लोकप्रिय रहे। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद मराठी उपन्यास के स्वरूप में बड़े परिवर्तन आए। मार्क्सवादी विचारधारा और फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त का इन परिवर्तनों में बड़ा योगदान रहा। फडके युग के एक प्रमुख उपन्यासकार थे विष्णु सखाराम खांडेकर (1898-1976)। वह मराठी साहित्य के सबसे लोकप्रिय उपन्यासकारों में एक थे। अपने उपन्यास 'ययाति' के लिए उन्हें भारतीय साहित्य का सबसे प्रतिष्ठित ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया।

1950 से 1975 के दौरान मराठी उपन्यास का नया स्वरूप विकसित हुआ। श्रीपद नारायण पेंडसे, व्यंकटेश मदगुलकर और गोपाल नीलकंठ दांडेकर इस दौर के प्रमुख उपन्यासकार रहे।

आधुनिक मराठी उपन्यास में जीवन की सभी जटिलताओं का विवेचन है। ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित भालचन्द्र नेमाड़े इस काल के सबसे प्रभावशाली उपन्यासकार हैं। वह 1963 से निरंतर लेखन कर रहे हैं। उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'कोसला' नई पीढ़ी में भी लोकप्रिय है। उनके उपन्यास मानव की ज्ञान-पिपासा को शांत करते हैं। अपने दार्शनिक रुझान के लेखन के बल पर उन्हें इस दर का सबसे महत्वपूर्ण उपन्यासकार माना जाता है।

मराठी उपन्यास-लेखन में 1990 के बाद के रुझान भी उत्साहवर्धक है। श्याम मनोहर वर्तमान समय के सबसे प्रमुख उपन्यासकारों में एक हैं। प्रवीण बांडेकर, रमेश इंगले उत्रादकर और आसाराम लोमाटे पूरे उत्साह और गंभीरता के साथ उपन्यास लिख रहे हैं।

मराठी साहित्य में साहित्यिक समालोचना की शुरुआत ब्रिटिश सत्ता के आने के साथ, उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही हो गई थी। मराठी समालोचना-लेखन को पांच कालों में बांटा जा सकता है-

प्रथम काल (1818-1874): इस काल में संस्कृत के समालोचना साहित्य का प्रभाव नज़र आता है। समालोचना के पाश्चात्य मानकों का भी मराठी समालोचना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। गणेश शास्त्री लेले की 'साहित्यशास्त्र' (1872) और दाजी प्रधान की 'रसमाधव' (1967) पुस्तकों पर संस्कृत समालोचना साहित्य का प्रभाव नज़र आता है। महादेव मोरेश्वर कुंटे ने शिवाजी महाराज पर लिखे काव्य की भूमिका लिखी। इस भूमिका में उन्होंने साहित्यिक सिद्धांतों, काव्य-रूपों, महाकाव्य, रूमानी कविता और शास्त्रीय प्रवृत्तियों की चर्चा की है।

द्वितीय काल (1874-1920): इस काल में विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ने साहित्यिक समालोचना की आधारशिला रखी। हरिभाऊ आप्टे और विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े ने अपनी श्रेष्ठ साहित्यिक तर्क-शैली से मराठी समालोचना को नया स्वरूप दिया। श्रीपद कृष्ण कोल्हाटकर ने समकालीन नाट्य परंपरा पर समीक्षाएं लिखीं। नरसिंह चिंतामण केलकर ने भी प्रचुर समालोचना लेखन किया।

तृतीय काल (1920-1940): इस काल में 'कला कला के लिए' और 'कला जीवन के लिए' के प्रश्न पर व्यापक चर्चा हुई। खांडेकर और आप्टे इन चर्चाओं के प्रमुख प्रतिभागी थे।

चतुर्थ काल (1940-1960): बाल सीताराम मारधेकर इस काल के सबसे प्रमुख समालोचक थे। उनका प्रमुख ग्रंथ है- 'वाङ्मयी महात्मता'। उन्होंने सौंदर्यशास्त्र और साहित्य के संबंध पर चर्चा की। एम पी रेगे, प्रभाकर पाध्ये और आर बी पाटणकर ने भी समालोचना-साहित्य को समृद्ध किया।

1960 के बाद के काल को साहित्यिक समालोचना का सम-सामयिक काल समझा जाता है। स्वतंत्रता के बाद की साहित्यिक समालोचना में आधुनिक साहित्य के साथ-साथ, प्राचीन साहित्य और साहित्यिक सिद्धांतों का भी अध्ययन किया जाता है। आधुनिक काल में, जी बी सरदार, डी के बेडेकर, नरहर करंदीकर आदि ने महत्वपूर्ण साहित्यिक समालोचना की। आज की नई समालोचना में इसके सिद्धांतों और इसके अंतिम लक्ष्य की भी चर्चा होती है।

मराठी साहित्य की हर विधा में श्रेष्ठ साहित्य रचा गया है। इसके महानतम रचनाकारों - विष्णु सखाराम खांडेकर,विष्णु वामन शिरवाडकर ('कुसुमाग्रज' नाम से चर्चित), वृंदा करंदीकर और भालचन्द्र नेमड़े को भारतीय साहित्य का सबसे प्रतिष्ठित ज्ञानपीठ पुरस्कार मिल चुका है। मराठी साहित्य की सात शताब्दियों की सुदीर्घ परंपरा है। इस विहंगावलोकन से गैर-मराठी पाठकों को मराठी साहित्य का सामान्य परिचय मिल सकेगा। ■

संदर्भ

1. मराठान्यांचा इतिहास (भाग 1): संपादक- ए.आर. कुलकर्णी, जी.एच. खरे
2. आधुनिक महाराष्ट्राचा इतिहास: डॉ. अनिल मुरलीधर कठारे
3. ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ मराठी लिट्रेचर : एम.के. नादकर्णी
4. इंडियन लिट्रेचर (साहित्य अकादमी की द्वैमासिक पत्रिका, अंक-301)
5. मराठी विश्वकोश- मराठी साहित्य, कादंबरी : उषा हस्तक
6. मराठी साहित्य- प्रेरणा व स्वरूप: जी.एम. पवार, एम.डी. हटकनांगलेकर
7. विकीपीडिया
8. विकासपीडिया
9. मराठी लिट्रेचर : एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका।

Scanned with CamScanner

कोविड-19 वैक्सीन के बारे में अक्सर पूछे जाने वाले प्रश्न

क्या कोविड वैक्सीन हर किसी को दी जाएगी?	वैक्सीन की उपलब्धता के आधार पर भारत सरकार ने प्राथमिकता वाले समूहों का चयन किया है, जिन्हें अधिक जोखिम होने की वजह से वैक्सीन पहले लगायी जायेगी। पहले समूह में हेल्थकेयर एवं फ्रंटलाइन वर्कर्स शामिल हैं। दूसरे समूह में 50 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति और 50 वर्ष से कम आयु के गंभीर रोगों से ग्रस्त व्यक्ति शामिल होंगे, जिन्हें कोविड-19 वैक्सीन लगायी जायेगी।
क्या वैक्सीन लगवाना अनिवार्य है?	कोविड-19 की वैक्सीन लगवाना स्वैच्छिक है। हालांकि, इस बीमारी से बचाव और यह बीमारी परिवार के सदस्यों, दोस्तों, रिश्तेदारों और सहकर्मियों सहित करीबी लोगों तक न पहुंचे, इसके लिए कोविड-19 वैक्सीन की पूरी खुराक लगवाने की सलाह दी जाती है।
वैक्सीन का अभी परीक्षण चल रहा है और इसे काफी कम समय में पेश किया जा रहा है, तो क्या यह वैक्सीन सुरक्षित रहेगी?	नियामक निकायों द्वारा इसकी सुरक्षा एवं प्रभावकारिता को जांचने के बाद ही देश में वैक्सीन को मंजूरी दी जाएगी।
क्या किसी ऐसे व्यक्ति को वैक्सीन लगाई जा सकती है, जिसे कोविड हो या होने की संभावना हो?	कोविड-19 संक्रमण वाले या होने की संभावना वाले व्यक्ति से टीकाकरण स्थल पर मौजूद दूसरे लोगों को संक्रमण फैलाने का खतरा हो सकता है। इस कारण से संक्रमित व्यक्तियों के ठीक होने तक टीकाकरण को 14 दिनों के लिए टाल देना चाहिए।
क्या कोविड से ठीक हो चुके व्यक्ति को भी वैक्सीन लगवाने की आवश्यकता है?	हां, यदि पूर्व में कभी कोविड संक्रमण हो चुका है तब भी कोविड-19 वैक्सीन की पूरी खुराक लेने की सलाह दी जाती है। यह बीमारी के खिलाफ मजबूत प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया विकसित करने में मदद करेगी।
अभी उपलब्ध कई वैक्सीन में से, एक या एक से अधिक वैक्सीन को कैसे चुना जाता है?	किसी वैक्सीन को लाइसेंस देने से पहले हमारे देश के ड्रग रेगुलेटर द्वारा वैक्सीन प्रतिभागियों पर किए गए क्लीनिकल परीक्षणों के प्राप्त डेटा से उसकी सुरक्षा एवं प्रभावकारिता की पुष्टि की जाती है। इसलिए जिन भी कोविड वैक्सीन को लाइसेंस दिया गया है वह सभी सुरक्षित और प्रभावी होगी। हालांकि यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि टीकाकरण के दौरान केवल एक प्रकार की वैक्सीन की पूरी खुराक दी जाये, क्योंकि कोविड-19 की उपलब्ध कई वैक्सीन में अदला-बदली नहीं की जा सकती।
क्या भारत कोविड वैक्सीन को +2 से +8 डिग्री सेल्सियस के तापमान पर स्टोर करने और इस आवश्यक तापमान पर उनको दूसरी जगह पहुंचा पाने में सक्षम है?	भारत 26 मिलियन से अधिक नवजात शिशुओं और 29 मिलियन गर्भवती महिलाओं के टीकाकरण की जरूरतों को पूरा करने हेतु दुनिया में सबसे बड़ा टीकाकरण कार्यक्रम चलाता है। देश की आबादी की जरूरतों को प्रभावी ढंग से पूरा करने हेतु इस कार्यक्रम के तंत्र को मजबूत/तैयार किया जा रहा है।
क्या भारत में लॉन्च की गई वैक्सीन, दूसरे देशों में पेश की गई वैक्सीन जितनी ही प्रभावी होगी?	हां, भारत में शुरू की गई कोविड-19 वैक्सीन अन्य देशों द्वारा विकसित किसी भी वैक्सीन जितनी ही प्रभावी होगी इसकी सुरक्षा एवं प्रभावकारिता सुनिश्चित करने हेतु वैक्सीन का विभिन्न चरणों में परीक्षण किया जाता है।
मुझे कैसे पता चलेगा कि मैं टीकाकरण हेतु पात्र हूं?	शुरुआती चरण में, कोविड-19 वैक्सीन प्राथमिकता समूह यानी हेल्थकेयर और फ्रंटलाइन वर्कर्स को ही दी जाएगी। वैक्सीन की उपलब्धता के आधार पर 50 से अधिक आयु वर्ग को भी इसमें शामिल किया जा सकता है। पात्र लाभार्थियों को उनके पंजीकृत मोबाइल नंबर के माध्यम से टीकाकरण करनेवाली स्वास्थ्य सुविधा और इसके निर्धारित समय के बारे में सूचित किया जाएगा। इससे लाभार्थियों को पंजीकरण करने और टीकाकरण में कोई असुविधा नहीं होगी।

Scanned with CamScanner

क्या कोई व्यक्ति स्वास्थ्य विभाग में पंजीकरण के बिना कोविड वैक्सीन प्राप्त कर सकता है?	नहीं, कोविड टीकाकरण के लिए लाभार्थी का पंजीकरण अनिवार्य है। पंजीकरण के बाद ही टीकाकरण स्थल और समय की जानकारी लाभार्थी के साथ साझा की जायेगी।
पात्र लाभार्थी के पंजीकरण हेतु कौन-से दस्तावेज आवश्यक हैं?	पंजीकरण के समय फोटो लगी हुई नीचे दी गई कोई भी आईडी दी जा सकती है- आधार कार्ड, ड्राइविंग लाइसेंस, श्रम मंत्रालय की योजना के तहत जारी किया गया स्वास्थ्य बीमा स्मार्ट कार्ड, महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) जॉब कार्ड, सांसदों/विधायकों/एमएलसी को जारी किए गए अधिकारिक पहचान पत्र, पैन कार्ड, बैंक/डाकघर द्वारा जारी पासबुक, पासपोर्ट, पेंशन दस्तावेज, केंद्र/राज्य सरकार/सार्वजनिक उपक्रमों/सार्वजनिक लिमिटेड कंपनियों द्वारा कर्मचारियों को जारी किए गए फोटोग्राफ के साथ सेवा पहचान पत्र, मतदाता पहचान पत्र, एनपीआर के तहत आरजीआई द्वारा जारी स्मार्ट कार्ड।
लाभार्थी को टीकाकरण की तय तारीख के बारे में जानकारी कैसे मिलेगी?	ऑनलाइन पंजीकरण के बाद, लाभार्थी को उनके पंजीकृत मोबाइल नंबर पर तय तारीख, स्थान और टीकाकरण के समय का एसएमएस मिलेगा।
क्या टीकाकरण के लाभार्थियों को टीकाकरण की प्रक्रिया पूरी होने के बाद उनके टीकाकरण की स्थिति की जानकारी दी जाएगी?	हां, कोविड-19 वैक्सीन की उचित खुराक दिये जाने के बाद, लाभार्थी को अपने पंजीकृत मोबाइल नंबर पर एक एसएमएस मिलेगा। वैक्सीन की सभी खुराक और टीकाकरण प्रक्रिया पूरी होने के बाद पंजीकृत मोबाइल नंबर पर एक क्यूआर कोड आधारित प्रमाण पत्र भी भेजा जाएगा।
यदि कोई व्यक्ति कैंसर, मधुमेह, उच्च रक्तचाप आदि बीमारियों की दवा ले रहा है, तो क्या यह कोविड वैक्सीन ले सकता है?	हां, इनमें से किसी एक या एक से अधिक बीमारियों वाले व्यक्तियों को उच्च जोखिम श्रेणी में रखा गया है। उन्हें कोविड टीकाकरण कराने की आवश्यकता है।
क्या टीकाकरण केंद्र पर किसी तरह के निवारक उपाय और सावधानियों का पालन करने की आवश्यकता है?	कोविड वैक्सीन लेने के बाद कम से कम आधे घंटे तक टीकाकरण केंद्र में ही आराम करें। यदि आपको कोई असुविधा या बेचैनी महसूस होती है, तो निकटतम स्वास्थ्य अधिकारियों/एएनएम/आशा कार्यकर्ताओं को सूचित करें। कोविड से बचाव के लिए जरूरी उपायों का पालन करते रहें जैसे, मास्क पहनना, नियमित और अच्छे तरीके से हाथ धोते रहना और शारीरिक दूरी (छह फीट या दो गज) बनाए रखना।
कोविड वैक्सीन से संभावित प्रतिकूल प्रभाव क्या है?	कोविड वैक्सीन की सुरक्षा जांच के बाद ही इसे लांच किया जाएगा। अन्य टीकों की तरह ही कुछ व्यक्तियों में हल्का बुखार, दर्द आदि जैसे सामान्य प्रतिकूल प्रभाव हो सकते हैं। लोगों को सुरक्षित तरीके से वैक्सीन दिये जाने हेतु राज्यों से कहा गया है कि वे कोविड वैक्सीन से संबंधित किसी भी प्रकार के दुष्प्रभावों से निपटने की व्यवस्था करना शुरू कर दें।
मुझे वैक्सीन की कितनी खुराक और कितने अंतराल पर लेनी होगी?	किसी व्यक्ति का टीकाकरण पूरा होने हेतु 28 दिनों के अंतर पर टीकाकरण की दो खुराक ली जानी चाहिए।
एंटीबॉडीज कब विकसित होंगे? पहली खुराक लेने के बाद, दूसरी खुराक लेने के बाद, या इसके काफी बाद?	आमतौर पर कोविड-19 वैक्सीन की दूसरी खुराक लेने के दो सप्ताह बाद एंटीबॉडीज का सुरक्षात्मक स्तर विकसित हो जाता है।

Scanned with CamScanner

योजना - सही विकल्प

'योजना' के अगस्त-2020 अंक से हमने पाठकों के लिए, खास तौर से सिविल सर्विसेज़ तथा अन्य प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वाले प्रतिभागियों के लिए बहुविकल्प प्रश्नों का स्तंभ 'योजना-सही विकल्प' शुरू किया है। इसमें 'योजना' के अंकों में प्रकाशित आलेखों/सामग्री से या फिर प्रतियोगी परीक्षाओं में पूछे जाने वाले ज्ञान के आधार पर प्रश्नों एवं विकल्पों को तैयार किया गया है।

1. गांधीजी द्वारा वर्ष 1933 तक सम्पादित समाचार-पत्र का नाम क्या था?

क) सर्वोदय ख) आर्य
ग) टाइम्स ऑफ इंडिया घ) यंग इंडिया

2. 'द इंडियन वार ऑफ इंडिपेंडेंस' नामक पुस्तक के लेखक कौन थे?

क) कृष्ण वर्मा ख) मैडम कामा
ग) बी.जी. तिलक घ) वी.डी. सावरकर

3. रौलेट एक्ट के विरोध में किसने लगान न देने का आंदोलन चलाने का सुझाव दिया था?

क) अबुल कलाम आज़ाद ख) गांधीजी
ग) रवीन्द्रनाथ टैगोर घ) स्वामी श्रद्धानंद

4. जालियांवाला बाग हत्याकांड के विरोध में वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् की सदस्यता से किसने इस्तीफा दे दिया?

क) महात्मा गांधी ख) रवीन्द्रनाथ टैगोर
ग) शंकरन नायर घ) जमनालाल बजाज

5. 'एक वर्ष में स्वराज' का नारा गांधीजी ने कब दिया?

क) दांडी मार्च के समय
ख) असहयोग आंदोलन के समय
ग) सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय
घ) गोलमेज सम्मेलन के समय

6. रेशम मार्ग विश्व के सुदूर हिस्सों के बीच जीवंत पूर्व-आधुनिक व्यापार एवं सांस्कृतिक कड़ियों के अच्छे उदाहरण हैं। निम्नलिखित में से कौन-सा एक, रेशम मार्गों के बारे में सत्य नहीं है?

क) इतिहासकारों ने स्थल पर और समुद्र से होकर अनेक रेशम मार्गों को पहचाना है।
ख) रेशम मार्गों ने एशिया को यूरोप और उत्तरी अफ्रीका से जोड़ा है।
ग) रेशम मार्ग ईस्वी सन् से पूर्व अस्तित्व में थे और वे लगभग पंद्रहवीं शताब्दी तक फले-फूले।
घ) रेशम मार्गीय व्यापार के कारण स्वर्ण और चांदी जैसी मूल्यवान धातुएं एशिया से यूरोप तक फैलीं।

7. प्रवाल के संदर्भ में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:

1. अत्यधिक सागरीय लवणता प्रवाल के विकास के लिए हानिकारक होती है।
2. पूर्ण स्वच्छ जल भी प्रवाल के लिए हानिकारक होती है।
3. चूना प्रवाल का प्रमुख भोजन होता है।

नीचे दिए गए कूट का प्रयोग कर सही उत्तर चुनिए:

क) केवल 1 ख) केवल 1 और 3
ग) केवल 3 घ) 1, 2 और 3

8. भारतीय संविधान के निम्नलिखित में से किस एक संशोधन द्वारा राष्ट्रपति को कोई भी मामला मंत्रिपरिषद् द्वारा पुनर्विचार किए जाने के लिए वापस भेजने का अधिकार दिया गया है?

क) 39वां ख) 40वां
ग) 42वां घ) 44वां

9. भारतीय संविधान के अनुसार, भारत के राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि वे निम्नलिखित में से किसको/किनको संसद के पटल पर रखवाएं?

1. संघ वित्त आयोग की सिफारिशों को
2. लोक लेखा समिति के प्रतिवेदन को
3. नियंत्रक-महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन को
4. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग के प्रतिवेदन को

निम्नलिखित कूटों के आधार पर सही उत्तर चुनिए:

क) केवल 1 ख) केवल 2 और 4
ग) केवल 1, 3 और 4 घ) 1, 2, 3 और 4

10. निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:

1. भारतीय संघ की कार्यपालिका शक्ति प्रधानमंत्री में निहित है।
2. प्रधानमंत्री, सिविल सेवा बोर्ड का पदेन अध्यक्ष होते हैं।

उपर्युक्त कथनों में से कौन-सा/से सही है/हैं?

क) केवल 1 ख) केवल 2
ग) केवल 1 और 2 घ) न तो 1 और न ही 2

सही उत्तर : 1. घ, 2. घ, 3. घ, 4. ग, 5. ख, 6. घ, 7. घ, 8. घ, 9. ग, 10. घ

Scanned with CamScanner

(...आवरण पृष्ठ 2 का शेष)

उपायों द्वारा वे बंगाल के आधुनिक युग को लाने के लिए प्रयत्नशील हों। वस्त्र और वेशभूषा, कविताएं और संगीत, चित्रकला, नाटकों का मंचन, धार्मिक विवेचन, देशप्रेम के कार्य-इस तरह के सभी विषयों में उनके मन राष्ट्रीयता के व्यापक आदर्श से शासित थे।"

देशप्रेम की गहरी भावना भी परिवार के वातावरण की वजह से उनमें भरी थी। इससे रवीन्द्रनाथ की साहित्यिक प्रतिभा के विकास को बढ़ावा मिला। देशप्रेम का वातावरण परिवार में कई पीढ़ियों से व्याप्त था।

रवीन्द्रनाथ की साहित्य-साधना आरंभ से ही बहुमुखी थी। कविता के अलावा, अन्य क्षेत्रों में भी उन्होंने तेज़ी-से प्रगति की। शताब्दी के मोड़ पर हम उन्हें एक ऐसे प्रतिष्ठित लेखक के रूप में पाते हैं जो अनेक क्षेत्रों में अपनी महत्ता स्थापित कर चुका है। बंगाल के देहाती क्षेत्र के प्राकृतिक सौंदर्य की छाप उनकी कविता पर भी पड़ी और वह उनकी कविताओं के लिए नया विषय बन गया। सोनार तरी की कविताओं में जो विशेष मोहकता है वह इसी स्रोत से आई है। इस संग्रह की अंतिम कविता पर किसी रहस्यमय व्यक्ति द्वारा चालित नौका का जो बिंब छाया है उसकी प्रेरणा, ज़ाहिर है, उन्हें पद्मा पर अपनी लंबी नौका-यात्राओं से ही मिली थी। चैताली नाम का पूरा कविता-संग्रह भी इस सुंदर प्रदेश का ही उपहार प्रतीत होता है। सुंदर दृश्यों और गांवों की छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन इसमें इस तरह के सूक्ष्म विवरणों के साथ मिलता है कि वे पाठक की आंखों के आगे साकार हो उठती है। वर्णनात्मक काव्य यहां हमें अपने उत्कृष्ट रूप में मिलता है। उनके काव्य की विषय-वस्तु में भी गहरी ध्वनि आ गई और उनका मन गंभीर विषयों की ओर मुड़ा।

बंगाल के देहाती क्षेत्र में रहते हुए रवीन्द्रनाथ में दो विभिन्न अन्त:प्रेरणाएं काम कर रही थीं। एक उन्हें एकाकी जीवन की ओर आकर्षित करती थी और ईश्वर के साथ आत्मिक एकता की लालसा पैदा करती थी, जिससे निर्दिष्ट समय पर जीवन देवता की उनकी धारणा का जन्म हुआ। दूसरी, उनके मन में दीन-हीन वर्गों के कल्याण की गतिविधियों को आगे बढ़ाने की उत्कंठा पैदा करती थी। इससे कालांतर में वे शिक्षा और ग्राम्य कल्याण की गतिविधियों में दिलचस्पी लेने लगे।

देहाती वातावरण का बाह्य भौतिक आकर्षण जब क्षीण होने लगा तो ये परस्पर-विरोधी लालसाएं उनके जीवन पर हावी हो गईं। इन्हें वे अपने अंतर्गगन के दो जुड़वां तारे कहते हैं।

1896 में लिखी गई चित्रा की कविताओं में ये विरोधी भावावस्थाएं स्पष्ट देखी जा सकती हैं। चित्रा में संकलित मन को झकझोर देने वाली कविता 'एबार फिराओ मोरे' में उन्होंने देहाती मज़दूरों के दयनीय जीवन पर अपना आक्रोश व्यक्त किया है। उसके एक अंश का भावानुवाद इस प्रकार है :

"तो आओ, कवि,
यदि तुममें जीवन शक्ति है।
तो उसे अपने साथ लाओ और बांटो।
यहां इतनी दरिद्रता है,
ये इतने रिक्त, दयनीय, बंद और
अंधकार में हैं,
इन्हें भोजन, प्रकाश, जीवन, खुली हवा की
शक्ति, स्वास्थ्य, उल्लास से उज्ज्वल दीर्घ जीवन की
और निर्भीक हृदय की ज़रूरत है।
इस दरिद्रता के बीच, कवि
देवलोक से एक बार
आत्मनिर्भरता की भावना लाओ।"

उनके बच्चे रामायण और महाभारत-भारत के इन दो महाकाव्यों से परिचित हों, इस बात का रवीन्द्रनाथ ने ख़ास ख्याल रखा। उनका यह विचार था कि हमारी परंपरा में जो कुछ उत्कृष्ट है उसे बच्चों के मनों तक पहुंचाने के यही सर्वोत्तम माध्यम हैं। वे एक उपमा दिया करते थे कि जिस तरह गंगा और यमुना नदियां गंगा के मैदान के करोड़ों लोगों को आहार प्रदान करती हैं, उसी तरह ये दो महाकाव्य भारत की संतानों को आत्मिक आहार प्रदान करते हैं।

ऊपर के उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाएगा कि रवीन्द्रनाथ ने इस मार्ग का विधान वैराग्य के कारण नहीं किया था। वैराग्य का कड़ा संयम, उन्हें पसंद नहीं था क्योंकि वे उसे विशुद्ध नकारात्मक रुख़ मानते थे। उनका तर्क था कि किसान अपने खेत को इसलिए नहीं जोतता है कि उसे बिना बोए छोड़ दे, बल्कि फसल उगाने के लिए जोतता है। इसी तरह, जीवन के पहले आश्रम में ब्रह्मचर्य के पालन का आदेश विद्यार्थी में अनुशासन की भावना भरने के लिए दिया गया है, जिससे कि उचित शिक्षा के लिए पीठिका तैयार हो सके।

ऐसा प्रतीत होता है कि वे यह मानते थे कि अनुशासन और शिक्षा की अधिवासी प्रणाली एक-दूसरे की पूरक है, इसलिए दोनों चीज़ें साथ चलनी चाहिए। वे यह महसूस करते थे कि नैतिक शिक्षा का कारगर ढंग, क्लास में लैक्चर या विद्यार्थी को उपदेश देना हो ही नहीं सकता। उसे तो वातावरण से लेना होता है। अध्यापक का आचरण और उसके कार्यों की नैतिकता ही ज्यादा कारगर ढंग से विद्यार्थी के चरित्र का निर्माण करते हैं।

फिर, वे यह भी सोचते थे कि चरित्र का निर्माण करने वाले जीवन के इस चरण में विद्यार्थी को सामान्य जीवन के थपेड़ों के आगे खुला नहीं छोड़ देना चाहिए। उसमें ख़तरा यह है कि अधमचरित्र लोगों का आचरण किशोर मन पर बुरा प्रभाव डाल, उसमें समय से पहले ही अनुचित इच्छाएं जगा सकता है। जैसे एक नाजुक पौधे को भेड़-बकरियों से बचाना ज़रूरी है, उसी तरह उन्हें ऐसे लोगों के संपर्क से अलग रखना ज़रूरी है। अनुशासन की प्रक्रिया से उनमें आंतरिक नियंत्रण की एक व्यवस्था के निर्माण में भी मदद मिलेगी, जिससे बाद के जीवन में वे दूसरों के अनुचित कार्यों का सामना कर सकेंगे।

यह भी हमारे देश की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली के स्वीकृत आदर्शों के अनुरूप है। तैतरेय उपनिषद् में यह निर्देश है कि शिक्षक को सदाचार की केवल सीख ही नहीं देनी चाहिए, बल्कि अपने खुद के कार्य से उसका उदाहरण सामने रखना चाहिए। यह भी कहा गया है कि विद्यार्थी को शिक्षक के केवल ऐसे आचरण का अनुकरण करना चाहिए जो अच्छा हो। शिक्षक को दी गई पदवी आचार्य का ही अर्थ है, ऐसा व्यक्ति जिसका आचरण निर्दोष है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रकृति-संबंधी कविताओं में उस रोमांच की धड़कन है जो उन्होंने उसकी विभिन्न अवस्थाओं में अनुभव की। परंतु, उनमें प्रकृति के अद्भुत और सुंदर पक्ष से जागृत भावना का मात्र प्रभावशाली चित्रण नहीं है। वे उसके पीछे छिपी सत्ता के बारे

Scanned with CamScanner

में प्रश्न उठाती है, और बाद में तो उसके साथ भौतिक संपर्क की तीव्र लालसा तक प्रकट करती है।

उदाहरण के लिए, नील गगन में तैरते शरद् के बादल नीचे धान के खेतों पर अपनी छाया डाल रहे हैं। प्रकृति के इस सौंदर्य को अपनी एक कविता में चित्रित करते हुए उन्हें उस सूत्रधार की याद आती है जिसका हाथ पीछे से इस खेल का संचालन कर रहा है, और वे कहते हैं :

"धान के खेतों पर भागतीं धूप और छाया
आज आंख-मिचौनी का खेल खेल रही है।
नील गगन में श्वेत मेघों के ये बेड़े
जिसने बहाए, वह कौन है"

उनकी एक और कविता को हम इस विचार के आदर्श उदाहरण के रूप में रख सकते हैं। उसमें वे कहते हैं कि ईश्वर को भाग्यशाली संपन्न वर्गों में नहीं, बल्कि ग़रीब वर्गों में खोजना चाहिए:

"वह वहां है जहां किसान
कड़ी ज़मीन जोत रहा है,
जहां मज़दूर पत्थर फोड़ रहा है।
वह धूप और बरसात में उनके साथ है,
उसके वस्त्र धूल से अटे हैं।
अपने इस पवित्र चोगे को उतार दो,
उसकी तरह नीचे धूल व मिट्टी में आ जाओ।"

इस दृष्टिकोण से, आम मानवजाति, और विशेष कर दीन-हीन वर्गों के कल्याण के लिए किया जाने वाला नि:स्वार्थ कार्य धार्मिक प्रेरणा की तुष्टि का सब से अच्छा मार्ग बन जाता है। कर्मकांड और प्रार्थनाओं का स्थान कल्याणकारी कार्य ले लेते हैं। कार्य छोटा हो और उसका थोड़ा ही परिणाम निकलता हो, तो कोई बात नहीं। मुख्य चीज़ यह है कि उससे किसी व्यक्ति विशेष की बजाय आम समाज का भला होना चाहिए। कसौटी यही है कि उस कार्य से संसार की भलाई के ध्येय को बढ़ावा मिले। भगवान के सेवक को इसलिए विश्वकर्मा बन जाना चाहिए। इस शब्द की उनकी अपनी व्याख्या इस प्रकार है :

"ईश्वर से जुड़ने के लिए हमें अपने स्वार्थ से प्रेरित काम छोड़ना होता है और विश्वकर्मा बनना होता है, 'सब के लिए' काम करना होता है। मेरा मतलब असंख्य लोगों के लिए नहीं है। जो भी काम अच्छा हो, वह फैलाव में चाहे जितना छोटा हो, स्वभाव से सबके लिए है। इस तरह के कार्य से करने वाले को सब के लिए कार्य करने वाले विश्वकर्मा की अनुभूति होती है।"

इस प्रकार धार्मिक अभिव्यक्ति ने एक उपयुक्त रूप की निरंतर खोज का पुरस्कार रवीन्द्रनाथ ठाकुर को उनके अपने ढंग के मानववाद में मिला। इस मानववाद में मनुष्य प्रेम और सेवा पात्र अपने अधिकार से नहीं, बल्कि ईश्वर की ऐसी अभिव्यक्ति होने के कारण बनता है जिसमें ईश्वर उसके सबसे निकट है। यह भारतीय परंपरा की भावना के अनुरूप है। मानववाद का धर्मनिष्ठा से सीधी जुड़ी एक धारणा के रूप में विकास यद्यपि प्राचीन काल में नहीं हुआ था, फिर भी उसके बीच प्राचीन साहित्य और आचार में खोजे जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, ईशोपनिषद के, जो यजुर्वेद संहिता का एक भाग है, पहले मंत्र का उल्लेख किया जा सकता है। उसमें कहा गया है कि संसार में हम जो कुछ भी देखते हैं, सब ईश्वर से व्याप्त है, इसीलिए हमें जीवन का संयम से उपभोग करना चाहिए। ज़ाहिर है, इसका अर्थ यही है कि हमें अपना आचरण इस तरह मर्यादा में रखना चाहिए जिससे अन्य मानव प्राणियों के हित पर आघात न हो। जिस आचरण का इसमें निर्देश है वह इस तथ्य के बोध से प्रेरित है कि मानव प्राणी ईश्वर को प्रतिबिम्बित करते हैं।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का मानववाद इस परंपरा को क़ायम रखता है। वह ईश्वर में उनकी आस्था से फूटता है और धर्म से प्रेरणा लेता है। यह विशेषता उनके मानववाद को पाश्चात्य ढंग के मानववाद से अधिक प्रभावशाली बनाती है। भगवत्सेवा की प्रेरणा बलवती भी है और सार्वभौमिक भी। अत: वह धर्मनिष्ठा को मानववाद से जोड़कर पाश्चात्य मानववाद से अधिक बलवती प्रेरणा देती है और धर्मनिष्ठा को उसके मूल से जोड़ देती है।

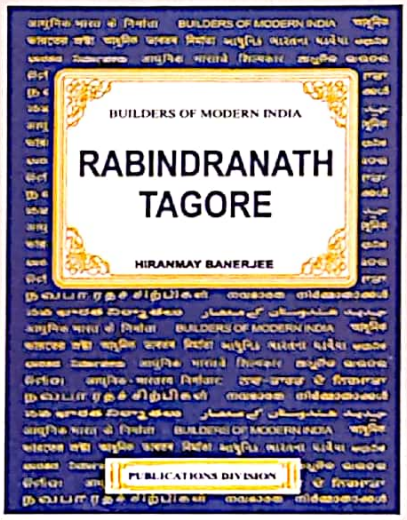

रवीन्द्रनाथ टैगोर
(बिल्डर्स ऑफ मॉडर्न इंडिया सिरीज़)
लेखक - हिरण्मय बनर्जी
भाषा - अंग्रेजी, मूल्य - रु. 95

सच्चाई तो यह है कि 1910 में गीतांजलि के प्रकाशित होने तक रवीन्द्रनाथ ठाकुर के भतीजे अवनीन्द्रनाथ को, जो उनके पुश्तैनी मकान की ही चारदीवारी में रहते थे, बाहर की दुनिया कहीं ज्यादा अच्छी तरह जानती थी। वह एक नये कला विद्यालय के संस्थापक के रूप में जाने जाते थे। उनकी ख्याति जब देश से बाहर फैली तो प्रतिष्ठित विदेशी कलाकार कला पर विचार-विमर्श करने के लिए उनसे घर पर मिलने आने लगे। उनमें जापानी चित्रकार तैक्कान और ओकाकुरा भी थे। सुप्रसिद्ध कलाकार हैवेल उनके बड़े प्रशंसकों में से थे। अपनी कला के ही कारण अवनीन्द्रनाथ की सुप्रसिद्ध ब्रिटिश कलाकार रोथेन्स्टाइन से मित्रता हो गई। ये कलाकार, उनके भतीजे के इतने घनिष्ठ संपर्क में होते हुए भी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बारे में कुछ नहीं जानते थे। इस तरह दुनिया की नज़रों में छिपे रहकर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, तैयारी के लंबे और अत्यंत क्रियाशील दौरों के बाद, अपनी प्रतिभा के चरमोत्कर्ष पर पहुंचे। वे अब उस भूमिका को ग्रहण करने के लिए तैयार थे जो नियति ने उनके लिए निर्धारित की थी। परंतु उससे पहले यह ज़रूरी था कि बाहर की दुनिया के लोग उनसे परिचित हों। परिचय की यह प्रक्रिया परिस्थितियों के विचित्र संयोग से इस तरह संपन्न हुई मानो कोई अदृश्य शक्ति उनके द्वारा अपनी योजना पूरी कर रही हो।

1902 में अपनी प्रिय पत्नी मृणालिनी देवी के देहांत के बाद से ही रवीन्द्रनाथ ठाकुर को गृहस्थ जीवन का सुख और आराम नहीं मिल

Scanned with CamScanner

रहा था। इसके विपरीत, परिवार में हुई कई मौतों और देश-भर में मची राजनीतिक उथल-पुथल का उनके शरीर पर बुरा असर पड़ा। कोई उनकी ठीक तरह देखभाल करने वाला नहीं था। अत: उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरने लगा। 1912 में वह बहुत ही ख़राब हो गया। आम कमज़ोरी के अलावा उन्हें एक ऐसी बीमारी भी हो गई जिसके लिए उनके चिकित्सकों ने शल्य-चिकित्सा की सलाह दी। उनकी सलाह के अनुसार आखिर यह फ़ैसला किया गया कि इलाज के लिए उन्हें लंदन ले जाया जाए।

यह तय हुआ कि 1912 के आरंभ में वे कोलकाता से ही जहाज़ पकड़ कर ब्रिटेन जाएंगे। यह भी निश्चय हुआ कि उनका पुत्र रथीन्द्रनाथ और पुत्रवधू प्रतिमा देवी उनके साथ जाएंगे। जहाज़ के टिकट ले लिए गए और केबिन सुरक्षित हो गए। जहाज़ चांदपाल घाट पर लगा था, एक दिन पहले उनका असबाब वहां भेज दिया गया था।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर को जिस दिन रवाना होना था, उसके पहले दिन शाम को कोलकाता उच्च न्यायालय के प्रतिष्ठित न्यायाधीश आशुतोष चौधरी के घर पर, जो उनकी भतीजी के पति थे, उनके लिए एक विदाई-समारोह आयोजित किया गया। समाज के गण्यमान्य व्यक्ति उन्हें हार्दिक विदाई देने के लिए वहां एकत्र हुए। समारोह समाप्त होने पर रात देर से वे घर लौटे। अगले दिन वे बहुत बीमार हो गए, इसलिए यात्रा रद्द करनी पड़ी और असबाब वापस मंगा लिया गया।

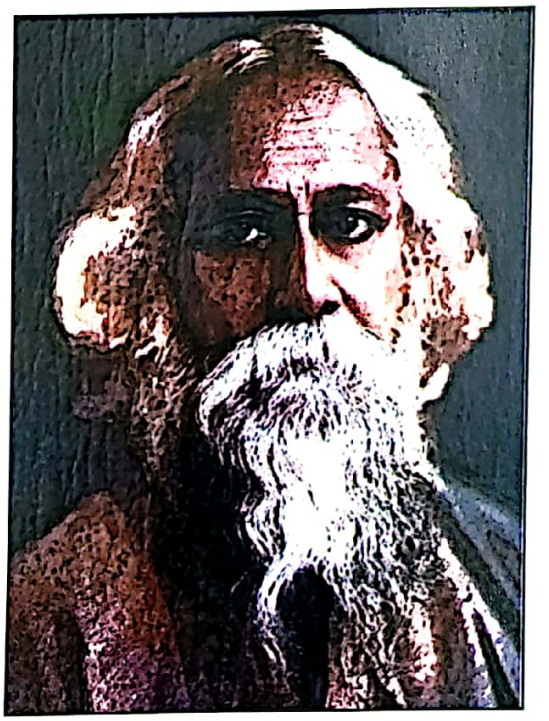

(7 मई 1861 - 7 अगस्त 1941)

इलाज से जल्दी ही उनकी हालत सुधर गई, इसलिए यात्रा का फिर प्रबंध किया गया। पर उसमें कुछ समय लगा। अब सवाल यह था कि बीच का यह समय वे कहां बिताएं। वे शान्तिनिकेतन वापस जाएं, डाक्टर इसके खिलाफ़ थे क्योंकि वहां वे अपने स्कूल के रोज़मर्रा के काम-काज में फंस सकते थे। दूसरी ओर, इतने दिन तक कोलकाता के पुश्तैनी मकान में रहना उनके मिज़ाज से मेल नहीं खाता था। इसलिए आख़िर यही फैसला हुआ कि वे यह समय सियालदह के शांत वातावरण में बिताएं और वहां के बंगले में रहें, जहां उनके पारिवारिक जीवन के सबसे अच्छे दिन बीते थे। यह जगह उनके अनुकूल और स्वास्थ्य की दृष्टि से तो अच्छी थी ही, साथ ही डाक्टरों के आशय को भी अच्छी तरह पूरा करती थी, क्योंकि वहां अलग-थलग रहते हुए वे पूरी तरह आराम कर सकते थे।

अत: रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपना ख़ाली समय बिताने के लिए सियालदह चले गए। उनके लिए लिखना तक मना कर दिया गया था, क्योंकि उनके स्वास्थ्य की दशा उस समय ऐसी थी कि वह उसके दबाव को सहन नहीं कर सकती थी। इन परिस्थितियों में, जबकि उन्हें कोई भी गंभीर कार्य करने की अनुमति नहीं थी, उनके सामने यह समस्या आई कि वे अपना समय कैसे बिताएं। उनमें यह प्रेरणा जगी कि वे ख़ाली समय अपनी कविताओं को अंग्रेज़ी में अनुवाद करने में लगा सकते हैं। अचानक इन संयोगों के कारण रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी कुछ कविताओं का भी अंग्रेज़ी अनुवाद करने का निश्चय किया। इस बात से उनको ऐसी आशा कभी-भी नहीं थी कि इन कार्यों से वे साहित्यिक जगत में उत्कृष्ट स्थान प्राप्त कर लेंगे। सियालदह के बंगले के एकांत में उन्होंने अपने विभिन्न काव्य-संग्रहों में से बहुत-सी कविताएं अनुवाद के लिए छांटीं। उनमें से 103 कविताओं का उन्होंने अनुवाद किया और संकलन को 'गीतांजलि' तथा अंग्रेज़ी में 'सौंग ऑफ़ रिग्स' नाम दिया।

उसे इस तरह का नाम देने की प्रेरणा उन्हें शायद दो कारणों से मिली। पहला यह कि उन 103 कविताओं में से 55 बांग्ला गीतांजलि से ली गई थीं और शेष अन्य आठ संग्रहों से थीं। अन्य संग्रहों में गीतिमाल्य का योगदान सबसे अधिक था; उसमें से 16 कविताएं ली गई थीं। ये दोनों संग्रह एक ही विषय से प्रेरित थे, यानी कवि और उसके वैयक्तिक ईश्वर का, जिसे वे जीवन देवता कहते थे। इस तरह इनका प्रधान स्वर ईश्वर के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति था और इस अर्थ में यह ईश्वर को गीतों की भेंट थी। बांग्ला गीतांजलि केवल इसी विषय से प्रेरित कविताओं का संग्रह है। अंग्रेज़ी संकलन का यही प्रधान स्वर था।

गीतांजलि यदि वह माध्यम थी जिसके द्वारा पाश्चात्य जगत रवीन्द्रनाथ ठाकुर से परिचित हुआ, तो उसके लिए घटना-क्रम को ठीक दिशा में मोड़ने वाले थे- विलियम रोथेन्स्टाइन। वस्तुत: रवीन्द्रनाथ ठाकुर के कहने पर उन्होंने बड़ी खुशी और सच्चे दिल से जो भूमिका निभाई, वे उसके लिए बहुत ही उपयुक्त थे। वे एक बड़े चित्रकार थे और अपने क्षेत्र में उनकी जो उपलब्धियां थीं, उनके कारण समाज में उनकी प्रतिष्ठा थी। दूसरी ओर, अपनी व्यापक अभिरुचि के कारण उनके मित्रों का एक बड़ा दायरा था जिसमें कला, राजनीति और साहित्य क्षेत्र के प्रमुख व्यक्ति शामिल थे।

अब तक रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गीतों ने, न केवल अपने विशिष्ट स्वरूप के कारण बल्कि लालित्य के कारण भी, अच्छी ख्याति अर्जित कर ली थी। अत: बंगाल में वे बहुत लोकप्रिय हो गए। इसलिए, लोगों की मांग को पूरा करने के लिए, शान्तिनिकेतन में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गीतों को सिखाने की भी व्यवस्था करनी पड़ी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर इस मामले में बड़े ही भाग्यशाली रहे क्योंकि उन्हें एक ऐसा व्यक्ति मिल गया जिसकी संगीत-चेतना अत्यंत विकसित थी। वह और कोई नहीं, उनके भाई का पोता दिनेन्द्रनाथ ठाकुर था जिसकी धुनों को याद रखने की क्षमता अद्भुत थी। किसी को एक बार गीत गाते सुनकर ही वह उसे बिल्कुल उसी तरह पेश कर सकता था और स्मृति से ही उसकी स्वरलिपि भी तैयार कर सकता था। ■

(अधिकांश भाग प्रकाशन विभाग की आधुनिक भारत के निर्माता शृंखला की पुस्तक 'रवीन्द्रनाथ टैगोर' से लिया गया है)

Scanned with CamScanner